उपनयन पद्धति

72

यह पुस्तक श्री पं० अमरनाथ जी भूतपूर्व कार्यालयाध्यक्ष गुरुकुल कांगड़ी ने गुरुकुल ------- वानप्रस्थ पुस्तकालय की सेवा में सादर भेंट दी।

अथ उपनयनपद्धतिः।



केसरीदास सेठ द्वारा
नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ में मुद्रित और प्रकाशित
सन् १९३९ ई०

उपनयनपद्धति की भूमिका ।

वेदज्ञ और वेदधर्म का प्रायः अभाव होने से ही इस देश में अनेक प्रकार के मत मतान्तरों का विवाद चल पड़ा है जिनकी निरन्तर चर्चा के कारण विद्यानुरागियों को वेदधर्म पर विचार करने का अवसर ही नहीं मिलता है और परस्पर के विवाद, वैर तथा फूट से ईश्वर और महाराज की दृष्टि में तुच्छ होते हैं । हमारा जीवन-सर्वस्व यह धर्मरूप महामणि किसी समय हमारे प्रतिगृह प्रतिशरीर में शिरोरत्नरूप से देदीप्यमान थी, सर्वत्र ही वेद की ध्वनि प्रतिध्वनित होरही थी, असंख्य यज्ञ प्रतिवर्ष सम्पादित होते थे, किसी प्रकार की किसी की शंका नहीं थी, देश आस्तिकता तथा धर्म कर्म के प्रभाव से भरापुरा हो रहा था,

द्विजातियों को सार्थ सस्वर वेदसंहितायें कण्ठाग्र थीं, पर समय कभी एकरूप नहीं रहता, कालक्रम से वैदिक क्रियाकाण्ड अज्ञानान्धकार में मग्न होने लगा, जहां सब ही वेदज्ञ थे, वहां अब बड़े यत्न से एक वेदज्ञ मिलता है, सो भी सार्थ वेद नहीं, पाठमात्र का ज्ञाता मिलता है, यदि इस समय सामग की आवश्यकता हो तो उसका मिलना कठिन ही पड़ जायगा, काशी से कान्यकुब्ज तक जो देश वेद-विद्या का भण्डार था वहां अब वाराणसी में ही एक दो वेदज्ञ विद्वान् पाये जाते हैं।

इस अपार दुर्विगाह त्रिविध दुःख अर्थात् आध्यात्मिक (शारीरिक और मानसिक) आधिभौतिक (सिंह व्याघ्र चौरादि मरण हेतुक) और आधिदैविक (विद्युत्पतन जलपतन उत्पात जन्म मरणरूप) अनेक दुःखों से संकुल संसार से कौन पार उतार सका है और परलोक में कौन सहायक है। जब विचार कर देखते हैं तो विना (सिवाय) धर्म के पुरुष का मित्र दुःखों के नाश करनेवाला संसारोद्धारक मोक्षदाता एक

धर्म ही है। वह धर्म यज्ञ, वेदाध्ययन, दान, तप, सत्य, धृति, क्षमा, अलोभ इत्यादि भेदों से अनेक प्रकार का है। तो यज्ञ वेदाध्ययन आदि धर्म का अधिकारी पुरुष तब ही हो सक्ता है कि यदि उपनयन संस्कार ही यथावत् कराया जाय तो पठन, पाठन, यजन, याजन में उपनयन संस्कार ही मुख्य है।

पहिले यह जानना बहुत ज़रूरी है कि "उपनयन" ऐसा प्रधान संस्कार जिसके ऊपर सारी वर्णाश्रम-व्यवस्था का भार है वह इस समय कष्टतर दशा को झेल रहा है। और दुःख का विषय है कि क्षत्रिय और वैश्य जाति से जनेऊ का व्यवहार उठसा गया। देखो राम नाम बड़ा पदार्थ है इसमें कोई शक नहीं, पर उपनयन भी वह पदार्थ है कि जिसकी पाबन्दी वर्णाश्रम शृंखला में बँधकर रामजी ने भी की थी। इसीलिये श्रौत्र कर्म का अधिकारी बनने के लिये पहिले उपनयन द्वारा द्विजाति होना अत्यावश्यक है।

४ सारांश यह है कि अपने अपने कल्पसूत्र [स्मार्तसूत्र, श्रौतसूत्रों] के अनुसार अधिक अथवा न्यून जितने संस्कार प्राप्त होवें उनका ही करना योग्य है। और पहिले जो संस्कारों की अधिक वा न्यून संख्या लिखी है वह सब वैदिक शाखा सूत्रों के भेद से है। इसीलिये गोत्र, प्रवर के समान शाखा सूत्र का भी स्मरण रखना अत्यावश्यक है। नहीं तो किस किस वाक्य के अनुसार संस्कार किया जायगा। सर्वथा संस्कार का उच्छेद होगा या दूसरे का बेटा बनना पड़ेगा। उक्त व्यवस्था में यह गृह्य परिशिष्टकार का वाक्य है—

"बह्वल्पं वा स्वगृह्योक्तं यस्य तावत् प्रकीर्तितम्।
तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वः कृतो भवेत्॥"

इसी प्रकार कात्यायन का वाक्य है—

"ऊनो वाऽप्यतिरिक्तो वा यः स्वशाखास्थितो विधिः।
तेन संतनुयाद् यज्ञं न कुर्यात् पारशाखिकम्॥ ४

परशाखोऽपि कर्तव्यः स्वशाखायां न नोदितः।
सर्वशाखासु यत् कर्म एकं प्रत्यवशिष्यते ॥"

ऐसी दशा में अन्यान्य स्मृतियों की उपेक्षा करके अपनी अपनी गृह्यस्मृति [स्मार्तसूत्र] के अनुसार यावच्छक्य गर्भाधानादि संस्कारों का अनुष्ठान करना न्याय प्राप्त है। और यह स्मरण रहै कि सर्वत्र स्मार्त कर्म में स्मार्तसूत्र और श्रौत्रकर्म में श्रौत्रसूत्र ही शरण हैं। शाखा-सूत्र के विस्मरण में वा उच्छेद में अन्यान्य स्मृतियों का शरण लेना यह अगतिक गति है इसी में सुफल है।

यह उपनयन पद्धति हमने कई एक हस्त लिखित प्राचीन पुस्तकों से उद्धृत कर संग्रह किया है कि जिसको पढ़कर स्वल्पविद्यासंपन्न भी पुरुष कर्मकाण्ड में अति निपुण होजाय और अनायास से कर्तव्यता को समझ कर अपना मनोरथ सिद्ध करे। इसलिये सज्जन पुरुष इस अत्यु- ५

त्तम सर्वोपयोगी उपनयनपद्धति को स्वीकार कर अपना मनोरथ और हमारा परिश्रम सफल करें।

प्रार्थना—"यदशुद्धमसंबद्धमज्ञानाच्च कृतं मया ।
विद्वद्भिः क्षम्यतां सर्वं बालत्वादयमंजलिः॥"

निवेदक ।

सामवेदोपाख्य—

परिडत शिवगोविन्द दीक्षित

उपनयन सामग्री।

आचार्यवरण की सामग्री—धोती, दुपट्टा, अंगोछा, कुशासन, लोटा, आचमनी। स्वयं परीधानार्थं वस्त्र—धोती, अँगरखा, पगड़ी, दुपट्टा, अंगोछा, जूता, छाता, छड़ी बांस की, चिचीड़ा। रोली, मोली, पान, सुपारी, आटा, पुष्प, माला, तुलसी, दूर्वा, कुशा, धूपबत्ती, घृत के दीपक, पेड़ा, बतासा, ऋतुफल, नारियल ४, चावल ऽ५, वस्त्र बिछाने का, वस्त्र चढ़ाने का, दूध, दही, घृत, चीनी, सहत, गोबर, गोमूत्र, पंचपल्लव, पंचरत्नकी पुड़िया, सर्वौषधि, सप्तमृत्तिका, पलाश की समिधा, गंगाजी की बालू, चौकी १, पीढ़ा २, यज्ञोपवीत १० जोड़ी, कौपीन, पलाश दंड, गूलरशाखा, मेखला-मुंजकी, स्रुवा, आम्रपत्र, वृत्तोदपत्र, केला के खंभा ४, कलश तांबे का ढपना सहित, पुण्याहवाचन कमंडलु, पूर्णपात्र, आज्यस्थाली कांसे की, प्रणीतापात्र, प्रोक्षणीपात्र, छायापात्र, गोमय बिनुवाँ कंडा, मृगचर्म, मुंज का बाध, बिल्व का दंड, खड़ाऊं, नवग्रह की समिधा, पुरवा, सकोरा दीया, पत्तल, सुतरी, पीलीसरसों, अदरख, मुनक्का, पटिया, तिल, गुलाल, बुक्का, हल्दी पीसी, मेंहदी बुकनी, काजल, दर्पण, अतर का फहा, फुलेल। कृच्छ्रत्रय-प्रायश्चित्त गोदान ३, गोदान पूर्वाङ्ग, गोदान उत्तराङ्ग, ब्राह्मण भोजन, दक्षिणा यथायोग्य। ७



सरस्वत्यै नमः ॥

उपनयनपद्धतिः ।

मङ्गलाचरणम् ।

विष्णुं शम्भुं गणेशं च ब्रह्माणं भारतीं तथा ।
अम्बिकाम्बुद्धिदात्रीं च वन्दे विघ्नोपशान्तये ॥

पितरौ शम्भुभक्तौ च श्रौतस्मार्तपरायणौ ।
नत्वा सर्वान्मुनीन्दिव्यान्वेदमार्गप्रवर्तकान् ॥
सृष्टौ या सर्गरूपा जगदवननिधौ पालनीया च रौद्री ।
संहारे चापि यस्या जगदिदमखिलं क्रीडनं या पराख्या ॥
पश्यन्ति मध्यमाथो तदनुभगवती वैखरी वर्णरूपा ।
सास्माद्वाचं प्रसन्ना विधिहरिगिरिशाराधितालंकरोतु ॥
उपनयनपद्धतेर्व्याख्या लोकोपकृतये कृता ।
बरौडास्थलनिवासिना शिवगोविन्दधीमता ॥
जयन्ति ते गुरोः पूज्याः पादपद्मस्य पांसवः ।
येषां प्रसादान्मन्दोऽपि महत्कर्मसमारभे ॥
वेदांगानि समालोच्य तथ्यमर्थं करोम्यहम् ।
स्वकल्पितत्वशङ्कात्र न कार्या पण्डितैरतः ॥

उ० अथोपनयनाख्यकर्म्मणः प्रयोगो लिख्यते— प०

३ तत्र ब्राह्मणस्याष्टवार्षिकस्य गर्भाष्टमवार्षिकस्य वा, क्षत्रियस्यैकादश-वार्षिकस्य, वैश्यस्य द्वादशवार्षिकस्योपपयनं कुर्यात्। यथा मंगलं वा सर्वेषां पंचमे षष्ठेऽष्टमेऽपि। अथोत्तरायणे शुक्लपक्षे पुण्येऽहनि मातृपूजा-पूर्वकगणपतिपूजनसहितमाभ्युदयिकं श्राद्धं कुर्यात्।

ततः बटोर्वपनङ्कारयित्वा, ब्राह्मणत्रयं भोजयेत्। अष्टौ कुमाराँस्तथो-पनीयमानं कुमारं च भोजयेत्। ॐ अद्येहेत्यादि, अमुकनाम्नः कुमार-स्योपनयनांगत्वेन ब्राह्मणान् सवटून् घृताद्युपस्करवदन्नेन भोजयिष्ये। तैस्सह पर्युप्तशिरसं कुमारं च भोजयेत्।

अथाचार्य्यो बहिश्शालायां पञ्चभूसंस्कारान्कृत्वा, लौकिकाग्निं स्थाप- ३
येत्। पंचभूसंस्कारो यथा—

उ० तत्र कुशैर्हस्तपरिमितां चतुरस्राम्भूमिं परिसमूह्य, तानैशान्यां निक्षिप्य, प०
४ गोमयोदकेनोपलिप्य, स्रुवमूलेन प्रादेशमात्रमुत्तरोत्तरक्रमेण प्रागग्रं त्रिरु-
ल्लिख्य, उल्लेखनक्रमेणानामिकांगुष्ठाभ्यां मृदमुद्धृत्य, वारिणा तन्देशम-
भ्युक्ष्य, कांस्यपात्रस्थं लौकिकाग्निं प्राङ्मुखमुपसमाधाय, शाण्डिल्य-
गोत्र पावकाग्ने इहागच्छ इहातिष्ठ, इति लौकिकाग्निं स्थापयित्वाचार्यः
प्रतिज्ञां कुर्य्यात्।ॐ अद्येहेत्यादि देशकालौ संकीर्त्य, बीजगर्भदुरितक्षयपू-
र्वकवेदाध्ययनादिवैदिककर्माधिकारसंपादकद्विजत्वसंसिद्धिकामोऽहम-
मुकनामानं वटुमुपनेष्ये, इति संकल्प्य । वैकल्पिकपदार्थानवधार-
येत् । तद्यथा इयन्दुरुक्तमिति मेखलाबंधनम् । मंत्रः—इयन्दुरुक्तं परिबाध-
माना वर्णं पवित्रं पुनतीमआगात् । प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा-
देवी सुभगा मेखलेयम् । पालाशो दण्डः । पुरस्ताद्ब्रह्मगमनादि अग्ने- ४

उ० कृत्तरतः प्राङ्मुखोपविष्टाय सद्योगायत्रीदानम्। अग्नये, इति समिधा- प०
५ दानम्। पूर्वम्माता भिक्षणीया। अप्रत्याख्यायिन्योऽपरिमिता इति।

अथ कुमारं मंगलद्रव्यैस्स्नापयित्वा, यथासंभवसुवर्णनिर्म्मितैः कुण्डलाद्यलंकारैः पुष्पमालादिभिश्चालंकृत्याचार्य्यपुरुषा आचार्यसमीपमानयन्ति। स्वस्तिवाचनकैः आदावाचार्यवरणम्। ॐ अद्येहेत्यादि देशकालौ स्मृत्वा, अमुकगोत्रममुकशर्म्माणममुकप्रवरशाखाध्यायिनमेभी रोचनाऽक्षतपूगीफलद्रव्यवासोलंकारपुष्पमालादिद्रव्यैराचार्य्य-

---

१ पर्युप्तशिरसि समलंकृतमानयन्ति—परिपूर्वस्य वपतेः कृतसम्प्रसारणस्यैतद्रूपम्। परिसर्वत उप्तं मुंडितं शिरो यस्य स पर्युप्तशिरास्तं अलंकृतं यथासंभवरत्नसुवर्णनिर्मितैः कुंडलाद्यलङ्कारैः आनयन्ति आचार्यपुरुषाः आचार्यसमीपम्—इति पारस्करगृह्यसूत्रम्।

२ आचार्यलक्षणं यमेनोक्तम्।

सत्यवाक्धृतिमान्दक्षः सर्वभूतदयापरः। आस्तिको वेदनिरतः शुचिराचार्य्य उच्यते॥
वेदाध्ययनसम्पन्नो वृत्तिमान्विजितेन्द्रियः। न याजयेद्वृत्तिहीनं वृणुयाच्च न तं गुरुम्॥ इति ५

उ० त्वेन त्वामहं वृणे। आचार्य्यः, वृतोऽस्मीति प्रतिवचनम्। अथाचार्य्यो प०
६ माणवकं स्वस्य दक्षिणतस्स्थापयित्वाऽऽह, ब्रह्मचर्य्यमागामिति ब्रूहि।
'माणवको ब्रह्मचर्य्यमागामिति' ब्रूयात्। ब्रह्मचार्य्यसानीति ब्रूहीत्या-
चार्य्येणोक्तो, ब्रह्मचार्य्यसानीति कुमारो ब्रूयात्। ततः वस्त्रपरिधानम्। तत्र
मंत्रः—ॐ येनेन्द्रायेत्यंगिराऋषिःबृहतीछन्दो बृहस्पतिर्देवता वासः परि-
धाने विनियोगः। ॐ येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम्। तेन
त्वापरिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे, इत्यनेन मंत्रेणाचार्य्यो-
यथोक्तं वासः कुमारं परिधापयति। अथाचार्य्यो माणवकस्य कटिप्रदेशे

---

१ ततो माणवकस्य क्षिराचनम्। अथ माणवकस्य वेष्टनत्रयेण (तीन रसी मूंज की) यथाचारेण कर्तव्यः। ततः प्रवरग्रंथियुतां कृत्वा मेखलामाचार्य्यो बध्नाति।

गोभिलाचार्य्यजी ने ऐसा कहा है।

मुंजकाशताचल्योरशनाः ॥ १० ॥ अथैनं त्रिःप्रदक्षिणं मुंजमेखलां परिहरन् वाचयतीयं ६

उ० मौंज्याद्यन्यतमाम्मेखलां बध्नाति । मंत्रः—इयन्दिुरुक्तमितिवामदेव- प०
७ ऋषिर्मेखला देवता त्रिष्टुप्छन्दो मेखलाबंधने विनियोगः। ॐ इयन्दिु-
रुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनतीमआगात्। प्राणापानाभ्यां बल-
मादधानास्वसादेवीसुभगामेखलेयम् इति मन्त्रं पठितवतः। ॐ युवा-

दुरुक्तात्परिवाधमानेत् ऋतस्य गोप्त्रीति च ॥ ३७ ॥ इतिसूत्रे। प्रथमप्रपाठकस्य अष्टा-
दशकाण्डिका ।

मेखलाधारणभैक्ष्यचर्य्यदण्डधारणसमिदाधानोदकोपस्पर्शनप्रातरभिवादा इत्येते नित्यधर्म्माः ॥ २७ ॥ [प्रथमप्रपाठकस्य विंशोकाण्डिका इति सूत्रे]

मेखलामवमुञ्चत उदुत्तमं वरुणपाशमिति ॥ ३३ ॥ [प्रथमप्रपाठकस्य त्रिविंशोकाण्डिका इति सूत्रे]

मेखला सप्तहस्ता स्यादजिनं तु द्विहस्तकम् । वर्हिर्लोमत्र्यंगुलं च खण्डैकं वा त्रिखण्डकम् ॥ त्रिवृता मेखला कार्या त्रिवारं स्यात्समावृता । तद्ग्रन्थयस्त्रयः कार्याः पंच वा सप्त वा पुनः ॥ अत्र प्रवरसंख्या नियमवद्धाः ॥

सावित्र्यां मेखलामाहुस्तस्मात् सर्व्वाणि धारयेत् । मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् ॥ अप्सु प्राश्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मंत्रवत् ॥ मौंजी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या
विप्रस्य मेखला । क्षत्रियस्य च मौर्व्वीज्या वैश्यस्य शणतान्तवी ॥ मुंजालाभे तु कर्त्तव्या ७

उ० सुवासाः परिवीतआगात्सउश्रेयान् भवति जायमानः । तंधीरासः कवय प०
८ उन्नयन्ति स्वाध्योमनसा देवयन्त, इति वा मंन्त्रं तूष्णीं मन्त्रवर्ज्जं वा ।
अत्रावसरे गायत्र्या शिखाबंधो माणवकस्य, प्रणवेन वा ॥

कुशाश्मान्तकवल्लजैः । त्रिवृता ग्रंथिनैकेन त्रिभिः पंचभिरेव वा ॥ इति गृह्याः प्रमाणम् ।

मेखलां बध्नीते -- ततो मेखलां मौञ्ज्यादिकां वक्ष्यमाणलक्षणां बध्नीते कटिप्रदेशे त्रिवृतां प्रवरसंख्याग्रंथियुतां प्रादक्षिण्येन परिवेष्टयति इयंदुरुक्तमित्यादिना मेखलेयमित्यन्तेन मंत्रेण माणवकपठितेन युवासुवासा इत्यादि देवयन्त इत्यनेन वा मंत्रेण मंत्ररहितं तूष्णीं वा मेखलां बध्नीते । अत्र यद्यपि सूत्रकारेण यज्ञोपवीतधारणं न सूत्रितम् तथाप्येकवस्त्राः प्राचीनावीतिन इति प्रेतोदकदाने प्राचीनावीतित्वविधानात् । दण्डाजिनोपवितानि मेखलाश्चैव धारयेदिति याज्ञवल्केन ब्रह्मचारिण उपवीतिधारणस्मरणात् । तथा सदोपवीतिना भाव्यं सदाबद्धशिखेन च । विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतमिति । छान्दोगपरिशिष्टे--कात्यायनेन सामान्यतः सर्वाश्रमिणां सदा यज्ञोपवीतधारणस्मरणाच्च । यज्ञोपवीतधारणं तावदुपनयनप्रभृति प्राप्तम् । तच्च कुत्र कर्तव्यमित्यवसरापेक्षायां औचित्यान्मेखलाबन्धनानन्तरं युज्यते । एतदेव कर्कोपाध्यायवासुदेवदीक्षितरेणुदीक्षितप्रभृतयः स्वस्वग्रंथे यज्ञोपवीतधारणमत्रावसरे लिखितवन्तः । तच्च सर्वकर्माङ्गत्वान्मन्त्रवद्युज्यत इति मन्त्रमपि शाखान्तरीयं लिखितवन्तः । ८

अथ यज्ञोपवीतं परिधत्ते—ततः आचाराद्यज्ञोपवीतसहितभांडाष्ट-
तयं ब्राह्मणेभ्यो दत्त्वा। ॐ तत्सदद्यामुकगोत्रःस्वकीयोपनयनकर्मविषय-

---

१ अत्र पारस्करो नास्ति सदाचार एव प्रमाणम्, यज्ञोपवीतम्, त्रिदण्डकम्, एकं परिधापयेत्।

यज्ञोपवीतं कुर्वीत सूत्रेण नवतान्तवम्। देवतास्तत्र वक्ष्यामि आनुपूर्व्वेण याः स्मृताः॥
ॐकारः प्रथमे तन्तुर्द्वितीयश्चाग्निदैवतः। तृतीयो नागदैवत्यश्चतुर्थः सोमदैवतः॥
पंचमः पितृदैवत्यः षष्ठश्चैव प्रजापतिः। सप्तमो वासुदैवत्यो अष्टमो यमदैवतः॥
नवमः सर्व्वदैवत्यः इत्येते नवतन्तवः। द्विगुणं त्रिगुणं वापि एकग्रन्थिकृतं विदुः॥
केन वोत्पादितं सूत्रं केन वा त्रिगुणीकृतम्। केन वाऽऽस्य कृतो ग्रन्थिः केन मंत्रेण मंत्रितम्॥
ब्रह्मणोत्पादितं सूत्रं विष्णुना त्रिगुणीकृतम्। रुद्रेण तु कृतो ग्रंथिः सावित्र्या चाभिमंत्रितम्॥
स्तनादूर्ध्वमधोनाभेर्न कर्तव्यं कथंचन। स्तनादूर्ध्वे श्रियं हन्ति नाभ्यधस्तात्तपः क्षयः॥
गोभिर्बालपवित्रेण धार्य्यमाणेन नित्यशः। न स्पृशन्तीह पापानि श्रियं गात्रेषु तिष्ठति॥
इति गोभिलगृह्यकारिका॥
कार्पासक्षौमगोवालशाणवल्कतृणादिकम्। यथा सम्भवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः॥
शुचौ देशे शुचिः सूत्रं संहतांगुलिमूलके। आवेष्ट्य षण्णवत्या तत्त्रिगुणीकृत्य यत्नतः॥

उ० कसत्संस्कारप्राप्त्यर्थं इदं मांडाष्टतयं सयज्ञोपवीतं सदक्षिणं यथा नामेति । पू०

१० ततो यज्ञोपवीतं परिदधाति माणवकः । तन्मन्त्रः । ॐ यज्ञोपवीतमिति-
मंत्रस्य परमेष्ठीऋषिर्लिङ्गोक्ता देवता त्रिष्टुप्छन्दो यज्ञोपवीतपरिधाने
विनियोगः । ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।

अच्छिन्नकैस्त्रिभिः सम्यक् प्रक्षाल्योर्ध्ववृतन्तुतत् । अप्रदक्षिणमावृत्तं सावित्र्या त्रिगुणीकृतम् ॥
अधः प्रदक्षिणं वृत्तं समं स्यान्नवसूत्रकम् । त्रिरावेष्ट्य दृढं बद्ध्वा हरिब्रह्मेश्वरान्नमेत् ॥
यज्ञोपवीतं परममितिमन्त्रेण धारयेत् । सूत्रं सलोमकं चेत्स्यात्ततः कृत्वा विलोमकम् ॥
सावित्र्यादशकृत्वोऽद्भिर्मन्त्रिताभिस्तदुक्षयेत् । विच्छिन्नंवाऽप्यधोयातंभुक्त्वानिर्मितमुत्सृजेत् ॥
पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम् । तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिलम्बं न चोच्छ्रितम् ॥
स्तनादूर्ध्वमधोनाभेर्नधार्यं तत् कथंचन । ब्रह्मचारिण एकं स्यात्स्नातस्य द्वे बहूनि वा ॥
तृतीयमुत्तरीयं वा वस्त्राभावे तदिष्यते । ब्रह्मसूत्रे तु सव्येंऽसे स्थिते यज्ञोपवीतिता ॥
प्राचीनावीतितासव्ये कण्ठस्थेहि निवीतिता । वस्त्रं यज्ञोपवीतार्थं त्रिवृत्सूत्रं च कर्मसु ॥
कुशमुंजवालतन्तुरज्वा वा सर्वजातिषु ॥ इति गर्गपद्धतिः ॥

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन तु । विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥ १०
यज्ञोपवीतं द्विजत्वचिह्नार्थमिति । कात्यायनः ॥

उ० आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥ यज्ञोपवीतम- पृ०
११ सियज्ञस्यत्वायज्ञोपवीतेनोपनयामि, इति मन्त्रं पठितवतो माणवकस्य
दक्षिणबाहुमुद्धृत्य वामस्कंधे यज्ञोपवीतं निवेशयति। तत आचमनद्वयं
माणवकस्य। ततस्तथैवतूष्णींमाणवकस्ययथोक्तमजिनमुत्तरीयं कारयति,
मन्त्रेण वा। तत्र मन्त्रः। ॐमित्रस्य चक्षुर्द्धरुणं बलीयस्तेजोयशस्विस्थ-
विरछंसमिद्धम्। अनाहनस्यं वसनं जरिष्णुपरीदं वाज्यजिनन्दधेहि, इति॥

अथाचार्य्यो माणवकाय दंडं ददाति। माणवकश्चादत्ते। ततो माणवक-

१ कृष्णाजिनधारणं प्रावरणार्थम्—तच्च॥
त्र्यङ्गुलं तु बहिर्लोम यद्वा स्याच्चतुरङ्गुलम्। अजिनं धारयेद्विप्रश्चतुर्विंशाष्टषोडशैः॥
इति प्रयोगरत्ने॥

२ तत आचार्य्यो माणवकाय तूष्णीं दंडं प्रयच्छति (ददाति)। माणवकश्च दक्षिण-
हस्तेन दण्डं प्रतिगृह्णाति यो मेदण्ड इति मंत्रेण। दण्डाश्च पालाशबैल्वोदुम्बरा ब्राह्मणक्ष-
त्रियविशां यथासंख्यं ज्ञेयाः। अथवा पलाशादयः सर्वेषां वर्णानां। पलाशो ब्राह्मणस्य ११

उ० केशपरिमितपालाशदंडमाचार्य्यः तूष्णीं तस्मै प्रयच्छति। तच्च मंत्रः— प०
१२ ॐ यो मे दण्ड इतिप्रजापतिऋषिर्दण्डो देवता यजुर्दण्डग्रहणे विनियोगः।
ॐ यो मे दण्डः परापतद्वैहायसोऽधिभूम्याम्। तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय, इत्यनेन मन्त्रेण तं प्रतिगृह्णाति। दीक्षाबद्धो दण्डं ददाति, प्रतिगृह्णाति। अथाचार्य्यः स्वकीयमंजलिं जलेन पूरयित्वा तेन जलेनांजलिस्थेन माणवकस्यांजलिं पूरयति, आपोहिष्ठेत्यनेन। ॐ आपोहिष्ठेति तिसृणां सिन्धुद्वीपऋषिरापोदेवता गायत्रीछन्दः अञ्जलिपूरणे विनियोगः।
ॐ आपोहिष्ठामयोभुवः, ॐ तानऊर्जेदधातनः, ॐ महेरणाय चक्षसे, ॐ यो वः शिवतमोरसः, ॐ तस्य भाजयतेह नः, ॐ उशतीरिवमातरः,

---

दण्डो वैल्वो राजन्यस्योदुम्बरो वैश्यस्य सर्वे वा सर्वेषामिति वक्ष्यमाणत्वात्। मानं च शास्त्रान्तरीयं ग्राह्यम्। केशसम्मितो ब्राह्मणस्य दण्डो, ललाटसम्मितः क्षत्रियस्य, घ्राणसम्मितो वैश्यस्येति॥ १२

ओं तस्मा अरंगमामवः, ओंयस्य क्षयाय जिन्वथ, ओं आपोजनयथाचन॥
इति मन्त्रेण। ततोमाणवकस्तं जलाञ्जलिं दत्त्वा। तत आचार्य्यः सूर्य्यमुदी-
क्षयति वटुम्माणवक आचार्येण शिक्षितस्तच्चक्षुरितिमन्त्रेण सूर्यमुदी-
क्षते। तत्र मन्त्रः—ओं तच्चक्षुरिति दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः पुरउष्णिक्छन्दः
सूर्य्यो देवता सूर्य्योदीक्षणे विनियोगः। ओं तच्चक्षुर्द्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमु-
च्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत ᳪ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्र-
वाम शरदः शतमदीनाः स्यामशरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्। इत्य-
नेनादित्यं पश्यति। अथाचार्य्यो माणवकस्य दक्षिणांशस्योपरि स्वं
दक्षिणं हस्तं नीत्वा हृदयमालभते। तत्र मन्त्रः—ओं मम व्रतेति प्रजापति-
ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो बृहस्पतिर्द्देवता हृदयालंभने विनियोगः। ओं ममव्रते
ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व

उ० बृहस्पतिस्त्वानियुनक्तु मह्यम्, इति मन्त्रेण। अथाचार्य्यो माणवकस्य द- पृ०
१४ क्षिणं हस्तं गृहीत्वा, को नामासीत्याह। एवं कुमारः पृष्टः। अमुकशर्म्मा-
हंभो ३ इति प्रत्याह। पुनराचार्य्यो माणवकं पृच्छति। कस्य ब्रह्मचार्य्य-
सीति। भवत इति माणवकेनोच्यमाने, आचार्य्यपठनीयोऽयं मन्त्रः।
ॐ इन्द्रस्य ब्रह्मचार्य्यस्याग्निराचार्य्यस्तवाहमाचार्य्यस्तवामुकशर्म्मन्नि-
त्याचार्य्यः पठति। तत आचार्य्यो माणवकं भूतेभ्यो दद्यात्। तत्र मन्त्रः—
ॐ अथैनं भूतेभ्यः परिददामि, ॐ प्रजापतये त्वा परिददामि, ॐ देवाय
त्वा सवित्रे परिददामि, ॐ अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः परिददामि, ॐ द्यावा-
पृथिवीभ्यां त्वा परिददामि, ॐ विश्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददामि,
ॐ सर्व्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्ट्यै * इत्यनेन मन्त्रेण अथ कुमारः

* रिष् हिंसायामित्यस्मिन्धातो क्तिन्प्रत्यये, रिष्टिः सिद्ध्यति, रिष्टिरुत्पातस्तदुपनाश- १४
नायेत्यर्थः। इति कात्यायनः।

उ० अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य, आचार्य्यस्योत्तरत उपविशति। अथाचार्य्यो देव- प०
१५ ताभिध्यानं करोति। उपकर्म्मणाहं यक्ष्ये तत्र प्रजापतिमिन्द्रमग्निं सोम-
मग्निं वायुं सूर्य्यमग्निं वरुणाग्निं वरुणं सवितारं विष्णुं विश्वान्मरुत-
स्स्वार्कान्वरुणं प्रजापतिमाज्येनाग्निं ँ स्विष्टकृतं चाज्येनाहं यक्ष्ये।
ततो ब्रह्मणो वरणं कुर्य्यात्। ततः पुष्पचंदनतांबूलवासांस्यादाय ततः ॐ
अद्य कर्तव्योपनयनहोमकर्म्मणि कृताऽकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म्म कर्त्तुम-
मुकगोत्रममुकप्रवरममुकशर्म्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचंदनतांबूलवासो-
भिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे। इति ब्रह्माणं वृणुयात्, इति। ॐ वृतोऽस्मीति प्रति-
वचनम्। *ॐ कर्म्म कुर्वित्याचार्येणोक्ते, ॐ करवाणीति तेनोक्ते, अग्नेर्द-

---

* पुनः पुष्पचंदनतांबूलवस्त्राण्यादाय। ॐ अद्यकर्तव्योपनयनकर्म्मणि होतृत्वकर्म्म-
कर्तुममुकगोत्रममुकप्रवरममुकशर्माणं ब्राह्मणेभिः पुष्पचन्दनतांबूलवासोभिः होतृत्वेन १५
त्वामहं वृणे। इति होतारं वृणुयात्। ॐ स्वस्तीति प्रतिवचनम्॥

उ० क्षिणतः शुद्धमासनं दत्त्वा तदुपरि प्रागग्रान्कुशानास्तीर्य्य, अग्निप्रद- प०
१६ क्षिणं कारयित्वा, ब्रह्माणमुदङ्मुखं तत्रोपवेश्य, अस्मिन्कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा
भवेत्यभिधाय, भवानीत्युक्ते, प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा, वारिणा परिपूर्य,
कुशैराच्छाद्य, ब्रह्मणो मुखमवलोक्य, अग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात्।
ततः परिस्तरणम् । बर्हिषश्चतुर्थभागमादाय, आग्नेयादीशानान्तम्,
ब्रह्मणोऽग्निपर्य्यन्तम्, नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तम्, अग्नितः प्रणीतापर्यन्तम्,
ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयम्, पवित्रकर-
णार्थं साग्रमनन्तर्गर्भकुशपत्रद्वयम्, प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थाली, सम्मा-
र्जनकुशत्रयम्, उपयमनकुशाः, वेणीरूपं कुशत्रयं, प्रादेशमात्राः समिध-
स्तिस्रः, स्रुवः आज्यम्, षट्पञ्चाशदुत्तराचार्यमुष्टिशतद्वयावच्छिन्नं तण्डु-
लपूर्णपात्रम् । एतानि पवित्रछेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशि क्रमेणासादनी- १६

यानि। ततः पवित्रच्छेदनकुशैः प्रादेशमितपवित्रेश्छित्वा, शष्पनिकरेण प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे निधाय, द्वाभ्यामनामिकांगुष्ठाभ्यां त्रिरुत्पवनम्। ततः प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीपात्रमभ्युक्ष्य, प्रोक्षणीजलेनासादितवस्तून्यभिषिच्य, अग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं निदध्यात्। तत आज्यस्थाल्यामाज्यं निरूप्य, प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य, दक्षिणत आज्यं निदध्यात्। ततस्तृणं प्रज्वाल्याज्योपरि प्रदक्षिणं भ्रामयित्वा, वह्नौ तत्प्रक्षेपः। ततस्त्रिः स्रुवतपनम्। संमार्ज्जनकुशानामग्रैरंतरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं संमृज्य, प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य, पुनस्त्रिः प्रतप्य, दक्षिणतो निदध्यात्। तत आज्यमग्नितः पूर्वेणानीय, अग्रे धृत्वा, आज्यस्य प्रोक्षणीवत्त्रिरुत्पवनम्, तत उत्थाय, उपयमनकुशान् वामहस्ते कृत्वा, प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा, तूष्णीमग्नौ घृताक्ताः तिस्रः समिधः प्रक्षिपेत्। तत उपविश्य, सपवित्रः १७

उ० प्रोक्षण्युदकेन प्रदक्षिणेनाग्निं पर्युक्ष्य, प्रणीतापात्रे पवित्रे निधाय, ब्र- प०
१८ ह्मणान्वारब्धः पातितदक्षिणजानुः समिद्धतमेऽग्नौ जुहुयात्। तत्र प्रथ-
माहुतिचतुष्टये तत्तदाहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थितहुतशेषस्य प्रोक्षणीपात्रे
प्रक्षेपः। ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये। ॐ इन्द्राय स्वाहा,
इदमिन्द्राय। ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये। ॐ सोमाय स्वाहा, इदं
सोमाय। ततोऽन्वारब्धेनाघारावाज्यभागौ हुत्वा। आज्येन। ॐ त्रिर्व्या-
हृतीनां प्रजापतिऋषिरग्निवायुसूर्य्या देवता गायत्र्युष्णिगनुष्टुभ-
श्छन्दांसि सर्वप्रायश्चित्तहोमे विनियोगः। ॐ भूः स्वाहा, इदमग्नये।
ॐ भुवः स्वाहा, इदं वायवे। ॐ स्वः स्वाहा, इदं सूर्य्याय। इदं
प्रायश्चित्तसंज्ञकम्। ॐ त्वन्नो अग्न इति वामदेवऋषिरग्निवरुणौ
देवते त्रिष्टुप्छन्दो होमे विनियोगः। ॐ त्वन्नोऽग्ने वरुणस्य विद्वा- १८

उ० न्देवस्य हेडो अवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमश्शोशुचानो विश्वा- पू०
१६ द्वेषाᳫंसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम् । ओ३म् सत्वन्नो अग्न
इतिवामदेवऋषिरग्निवरुणौ देवते त्रिष्टुप्छन्दोहोमे विनियोगः।ओ३म् सत्व-
न्नोऽअग्नेवमोभवोतीनेदिष्ठोऽस्याउषसोव्युष्टौ । अवयक्ष्वनोवरुणᳫंरराणो
णो वीहिमृडीकᳫंसुहवो नऽएधि स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम् । ओ३म्
अयाश्चाग्न इति वामदेवऋषिरग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दो होमे विनियो-
गः। ओ३म् अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्वमया असि । अयानो
यज्ञᳫंवहास्ययानो धेहि भेषजᳫं स्वाहा ॥ इदमग्नये । ओ३म् येतेशतमिति-
वामदेवऋषिः सविताविष्णुर्विश्वेमरुतस्स्वर्कोदेवतास्त्रिष्टुप्छन्दो होमे
विनियोगः । ओ३म् येते शतं वरुणये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः
तेभिर्न्नोऽद्य सवितोत्तविष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतस्स्वर्कास्स्वाहा ॥ इदं वरु- १६

उ० णाय, सवित्रे, विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यःस्वर्केभ्यः। ॐ उदुत्त- प०
२० ममिति शुनश्शेफऋषिर्वरुणो देवता त्रिष्टुप्छन्दो होमे विनियोगः।
ॐ उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमꣳ श्रथाय। अथावयमादि-
त्यव्रते तवानागसोऽअदितये स्याम स्वाहा॥ इदं वरुणाय। एताः सर्वाः
प्रायश्चित्तसंज्ञकाः (ततोऽन्वारब्धं विना)। ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं
प्रजापतये, इति मनसा प्राजापत्यम्। ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इद-
मग्नये स्विष्टकृते। ततः संस्रवप्राशनम्। आचम्य। ततो ब्रह्मणे दक्षिणा-
दानम्। पूर्णपात्रं वरं वा ब्रह्मणे दद्यात्। ॐ अद्य कृतैतदुपनयनहोमक-
र्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवत-
ममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय ब्रह्मणे तुभ्यमहं संप्रददे। इति दक्षिणां
दद्यात्। स्वस्तीति प्रतिवचनम्। ॐ सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु। २०

उ० इति पठित्वा। पवित्राभ्यां प्रणीताजलमानीय, माणवकस्य शिरः संमृज्य। प०
२१ ॐ दुर्म्मित्रियास्तस्मैसन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। इत्यैशान्यां
प्रणीतान्युब्जीकरणम्। ततस्स्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थाप्य घृतेनाभिघार्य्य,
हस्तेनैव जुहुयात्। ॐ देवागातु विदोगातुं वित्वागातुमिता। मनसस्पत
इदं देवाय यज्ञꣳ स्वाहा वातेधास्स्वाहा॥ इति बर्हिर्होमः। तत आचार्य्य
एनं माणवकं संशास्ति कथाम्। ब्रह्मचार्य्यसीत्याचार्य्यो वदति। अशा-
नीति ब्रह्मचारी। आपोशानेत्याचार्य्य। अशानीति ब्रह्मचारी। कर्म्मकु-
र्वित्याचार्य्यः। करवाणीति ब्रह्मचारी। मा दिवा सुषुप्था इत्याचार्य्यः।
न स्वपामीति ब्रह्मचारी। वाचं यच्छेत्याचार्य्यः। यच्छानीति ब्रह्मचारी।
समिधमाधेहीत्याचार्य्यः। आदधानीति ब्रह्मचारी। आपोशानेत्याचार्य्यः।
अशानीति ब्रह्मचारी। अथास्मै, एवं शासिताय ब्रह्मचारिणे आचार्य्यः २१

उ० सावित्रीमन्वाह । कीदृशाय उत्तरतोऽग्नेः प्रत्यङ्मुखमुपविष्टाय, पादो- प०
२२ पसंग्रहणपूर्व्वकमुपसन्नाय, आचार्य्यं समीक्षमाणाय, स्वयमप्याचार्य्येण
समीक्षिताय, गुरुः प्रणवव्याहृतिपूर्व्विकां गायत्रीं दद्यात्।ओम्प्रणवस्य पर-
ब्रह्म ऋषिः परमात्मा देवता गायत्रीछन्दो व्याहृतीनां प्रजापतिऋषिरग्नि-
वायुसूर्या देवता गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि तत्सवितुरितिमन्त्रस्य
विश्वामित्रऋषिः सविता देवता गायत्रीछन्दः सावित्रीदाने विनियोगः।
सा यथा *——

१ यथा यरुद्धोर्द्धवंशः सर्वां च तृतीयेनानुवर्तयन्ति । [त्र कांड २]।

* अथाचार्य्यः, उक्तप्रकारेण सावित्रीमन्वाह । संवत्सरे वा षण्मासे वा चतुर्विंश-
त्यहे वा द्वादशाहे वा षडहे वा त्र्यहे वा काले क्षत्रियवैश्ययोर्वा ब्रह्मचारिणे आचार्य्यः
सावित्रीं ब्रूयात् । ब्राह्मणाय तु—सद्य एव सावित्रीं, गायत्रीच्छन्दस्कां सवितृदेवतामृचं
विश्वामित्रदृष्टां सायमग्निहोत्रहोमानन्तरं, गार्हपत्याग्न्युपस्थाने; विनियुक्तां तत्सवितु-
रिति गायत्रच्छन्दस्कामेव सर्ववेदशाखाम्नातां ब्रह्मदृष्टगायत्रीछन्दस्कपरमात्मदैवतवेदार- २२

उ० ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यंभर्गोदेवस्य पृ०
२३ धीमहि। धियोयोनः प्रचोदयात् ओ३म् ॥

इति वटुना सह स्वयमपि पठन् प्रथमं पादं प्रथमावृत्तौ, द्वितीयावृत्तौ,

---

ओमादिविनियुक्तप्रणव प्रजापतिदृष्टाग्निवायुसूर्य्यदैवतगायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दस्काग्न्याधान-विनियुक्तभूर्भुवस्स्वरिति महाव्याहृतिपूर्विकां ब्राह्मणाय ब्रह्मचारिणे आचार्य्योऽनुब्रूयात्। अथ क्षत्रियाय तु—त्रिष्टुप्छन्दस्कां बृहस्पतिदृष्टां सवितृदेवताम्। यथा। देव सवितः प्रसुवयज्ञं प्रसुवयज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु स्वाहा। इमामृचं वाजपेये आज्यहोमे विनियुक्तां दद्यात्। तथा वैश्याय—प्रजापतिदृष्टां जगतीछन्दस्कां सवितृदेवतां रुक्मपाशमतिमोचने उखासम्भरणे विनियुक्ताम्। यथा विश्वारूपाणि प्रतिमुञ्चते कविः प्रासावीः। द्विपद्द्विपदे चतुष्पदे विनाकमख्यत्सवितावरेण्योनुप्रवाणमुखमो विराजति। एनामृचं ब्रूयात्। सर्व्वेषां ब्राह्मणक्षत्रियविशां गायत्रीमेव सावित्रीमुक्तलक्षणां ब्रूयात्।

गायत्री की व्याख्या—भारद्वाजस्मृति, वृत्तरत्नाकर, व्यास, याज्ञवल्क्यजी, ऋष्यशृंग, कूर्मपुराण, बृहदारण्यउपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, ऋग्वेद, शांकरभाष्य, महीधरभाष्योक्त, सायणाचार्य्यभाष्य, इत्यादि ग्रंथों में विस्तार-समेत वर्णन की गई है। २३

उ० अर्द्धर्चः । तृतीयावृत्तौ सर्वं सहानुवर्त्तयन् ब्रूयात् । अत्रावसरे ब्रह्मचारी प०
२४ समिधादानं करोति । तत्र तावदुपकल्पनीयानि । इन्धनं त्रेधा विभ-
क्तम् । पर्युक्षणार्थमुदकम् । समिधस्तिस्रः, उक्तलक्षणाः । पुनरिन्धनवार-
णीयः । ततः पाणिनाग्निं परिसमूहति—(समृद्धी करोति) । अग्नेस्सुव
इत्यादीनां ब्रह्माऋषिरग्निर्देवता यजुः परिसमूहने विनियोगः । * ॐ
अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु । ॐ यथात्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि । ॐ
एव माꣳसुश्रवः सौश्रवसं कुरु । ॐ यथात्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा
असि । ॐ एवमहं मनुष्याणां देवस्य निधिपो भूयासꣳस्वाहा । इत्येतैः
पञ्चभिर्मन्त्रैःप्रतिमन्त्रमिन्धनप्रक्षेपेणाग्निं सन्धुक्षयति । हस्ताभ्यां सन्धु-
क्षणं प्रसिद्धिरप्यस्तिकेषाञ्चित् । ततोऽग्निप्रदक्षिणम् । हस्तेनाद्भिःपर्युक्ष्य २४

* पंचशुष्कगोमयखंरडान् घृताक्तानग्नौ एकैकं जुहुयात् ।

उत्थाय, तिष्ठन्, समिधमादधाति । तत्र मंत्रः । अग्नय इति प्रजापति-
उ० २५ ऋषिः समिद्देवता प्रकृतिश्छन्दः समिधादाने विनियोगः । ॐ अग्नये प०
समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे यथात्वमग्ने समिधा समिध्यस एवमहमा-
युषा मेधया वर्च्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्च्चसा समिन्धे जीवपुत्रो ममा-
चार्य्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो-
भूयास ꣳ स्वाहा, इत्यनेन मंत्रेण, उक्तलक्षणामेकां समिधं कर्णे कृत्वाऽ-
ग्नौ समादधाति । अनेनैव द्वितीयां तृतीयां वा समिधमाधत्ते । ततः,
एषा ते इत्यस्य मंत्रस्य आङ्गिरसो बृहस्पतिऋषिरग्निर्द्देवता अनुष्टुप्छ-
न्दः । एषा ते इत्यस्य अग्ने समित्तया वर्द्धस्ववाचाप्यायस्वावर्द्धिषीमहि
च वयमाचप्यासिषीमहि ॥ अनेन मंत्रेण अग्नये समिधमाहार्षम्, अनेन
मंत्रेण वा । आभ्यां समुचिताभ्यां मंत्राभ्यां वा, एकैकशस्तिस्रः समिध- २५

उ० मादधाति । तत उपविश्य पूर्ववत्, अग्नये सुश्रवस इत्यादि मंत्रैरग्निं स- पृ०
२६ न्धुक्ष्य, पर्युक्ष्य, तूष्णीं पाणी प्रतप्य प्रतप्य मुखं मार्जयेत् । ओं तनूपा
इत्यस्य मंत्रस्य देवा ऋषय अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः तनुःप्रतपने विनि-
योगः । ओं तनूपा अग्नेऽसि तन्वम्मे पाहि १ । ओं आयुर्दा अग्नेऽस्या-
युर्म्मे देहि २ । ओं वर्च्चोदा अग्नेऽसि वर्च्चो मे देहि ३ । ओं अग्ने यन्मे
तन्वा ऊनन्तन्म आपृण ४ ओं मेधां मे देवः सविता आदधातु ५ । ओं
मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु ६ । ओं मेधामश्विनौ देवावाधत्तां
पुष्करस्रजौ, इति एभिः सप्तभिर्मंत्रैः पाणी प्रतप्य ललाटाच्चिबुकपर्यन्तं
मुखं विमार्ष्टि । अत्र प्रत्येकमंत्रः । ओं अङ्गानि च म आप्यायन्ताम्,
अनेन मंत्रेण शिरःप्रभृति पादान्तं सर्वाङ्गमालभते । ओं वाक् च मे आप्या
यतामिति मुखम् । ओं प्राणश्च मे आप्यायतामिति नासिके । ओं चक्षु- २६

उ० श्च मे आप्यायतामिति चक्षुषी युगपत् । ॐ श्रोत्रं च मे आप्ययता- पृ०
२७ मिति दक्षिणं श्रोत्रम् । ततस्तेनैव वामम् । ॐ यशोबलं च मे आप्या-
यतामिति बाहुमूले, इति मंत्रं पठेत् । उदकस्पर्शः । ततोऽनामिकया भस्म
गृहीत्वा, त्र्यायुषाणि कुरुते । ॐ त्र्यायुषमिति मंत्रस्य नारायणऋषि-
रुष्णिक्छन्दो, यजमानाशीर्देवता त्र्यायुषकरणे विनियोगः । ॐ त्र्यायुषं
जमदग्नेरिति ललाटे । ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषमिति ग्रीवायाम् । ॐ यद्देवेषु
त्र्यायुषमिति दक्षिणेंसे । ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषमिति हृदि । अत्रैव स्मृत्य-
न्तरोक्ताभिवादनप्रकारः । तद्यथा अमुकगोत्रोऽमुकप्रवरोऽमुकशर्म्माहं भो
अग्ने त्वामभिवादयामि । एवं श्रीगुरो त्वामभिवादयामि, इत्यभिवादयेत् ।
पादोपसंग्रहणं व्यस्तपाणिना कर्त्तव्यम् । ततो गुरुराशिषं प्रयच्छति । आ-
युष्मान्भव सौम्यामुकशर्म्मन् भोः ३ । अत्र समये ब्रह्मचारी भैक्ष्यं चरति । २७

उ० तद्यथा * ओ३म् भवति मातर्भिक्षां देहीति ब्राह्मणः। ओ३म् भिक्षाम्भवति देहीति पृ०
२८ क्षत्रियः। ओ३म् भिक्षां देहि भवतीति वैश्यः। तत आचार्य्याय भैक्ष्यं निवेदयेत्। आचार्य्य ! इयं भिक्षा मया लब्धा, आचार्य्यश्च तां स्वीकुर्यात्। ततः फलपुष्पचंदनघृतपूर्णस्रुवेण ब्रह्मचारीदक्षिणकरस्पृष्टेनाचार्यःपूर्णाहुतिं दद्यात्। तत्र मंत्रः—ओ३म् मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽ आजातमग्निम्। कवि ꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनयंत देवाः स्वाहा इदमग्नये। ततः स्रुवेण भस्मानीय, दक्षिणानामिकाग्रगृहीतभस्मना। ओ३म् त्र्यायुषं जमदग्नेः इति ललाटे, ओ३म् कश्यपस्य त्र्यायुषं इति ग्रीवायाम्, ओ३म् यद्देवेषु त्र्यायुषं इति दक्षिणबाहुमूले, ओ३म्

* अत्र भिक्षायाचनवाक्ये भवति, इति स्त्रीसम्बोधनपदात् स्त्रियो भिक्षेत। इति प्राप्तम्। ताः कीदृशीः कति च, इत्यपेक्षायां याः प्रत्याख्यानं न कुर्वन्ति ताः भिक्षेत। २८
ताः कति, तिस्रः, षट्, द्वादश वा द्वादशभ्योऽधिका वा मातां प्रथमं भिक्षेतेति।

उ० तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषं इति हृदि। इति त्र्यायुषं कुर्यात्। कुमारपक्षे तन्नो प०
२६ इत्यस्यस्थाने तत्ते इति विशेषः।

अथ ब्रह्मचारीनियमानाह। अधश्शायी, अक्षारलवणं वा अश्नाति, दण्डधारणम्, दण्डाजिनोपवीतानि मेखलां चैव धारयेदित्याद्युक्तत्वात्।

१—न संशयं प्रपद्येत नाकस्मादप्रियं वदेत्। नाहितं नानृतं चैव न स्तेनः स्यान्न वार्धुषी॥ दाक्षायणी ब्रह्मसूत्री वेणुमान्सकमण्डलुः। कुर्यात्प्रदक्षिणं देवं मृद्गोविप्रवनस्पतीन्॥ न तु मेहेन्नदीच्छायावर्त्मगोष्ठांबुभस्मसु। न प्रत्यगग्न्यर्कनोसोमसंध्यांबुस्त्रीद्विजन्मन॥ नेक्षेतार्कं न नग्नां स्त्रीं न च संसृष्टमैथुनाम्। न च मूत्रं पुरीषं वा नाशुची राहुतारकाः॥ अयं मे वज्र इत्येवं सर्वं मंत्रमुदीरयेत्। वर्षत्यप्रावृतो गच्छेत् स्वपेत्प्रत्यक्शिरा न च॥ ष्ठीवनासृक्शकृन्मूत्ररेतांस्यप्सु न निक्षिपेत्। पादौ प्रतापयेन्नाग्नौ न चैनमभिलंघयेत्॥ जलं पिवेन्नांजलिना शयानं न प्रबोधयेत्। नाक्षैः क्रीडेन्नधर्मघ्नैर्व्याधितैर्वा न संविशेत्॥ विरुद्धं वर्जयेत्कर्म प्रेतधूमं नदीतरम्। केशभस्मतुषांगारकपालेषु च संस्थितिम्॥ नाचक्षीत धयन्तीं गां नाद्वारेण विशेत्कचित्। न राज्ञः प्रतिगृह्णीयात् लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः॥ याज्ञवल्क्य-स्मृतिः अध्यायः १ श्लोकः-३२-४०। २६

उ० सदा लिङ्गचिह्नधारणं कुर्यात् । सायं प्रातः परिसमूहनपूर्वकं त्र्यायुषकर- प०
३० णान्तेनाग्निपरिचरणम् । गुरुशुश्रूषाभिक्षाचर्या सायं प्रातर्भोजनार्थं सान्नि
धाने वारद्वयं वा भैक्ष्यचरणमनिंद्येषु ब्राह्मणगृहेषु गुर्वाज्ञया याचित्वा ।
भोजनानि विधिना भुञ्जानो, मधुक्षौद्रमांसम्, (पललम्), नद्यादौ स्ना-
नम्, खट्वादावासनम्, स्त्रीमध्ये व्यवस्थानम् अनृतम् (असत्यवाक्यम्),
अदत्तानां परद्रव्याणामादानम्, एतानि वर्जयेत् । मधुमांसाञ्जनोच्छिष्ट-
शुक्लस्त्रीप्राणिहिंसनम् । भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि वर्जयेत् ।

उपनयन कर्म समाप्त होने पर प्रथम सायं संध्या का समय आता है वह अवश्य करना चाहिये ।

"उपास्य पश्चिमां संध्यां हुत्वाग्निस्तामुपास्य चेति" इसी प्रकार से ब्रह्मचारी दूसरे दिन से प्रातः--सायं संध्या अवश्य करे । संध्या के न करने से दोषभागी होता है ।

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च संध्या वेदाः शाखा धर्मकर्माभिपत्रे । तस्मान्मूलं यत्नतो रक्ष-
णीयं छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम् ॥ ॐकारः प्रौढमूलः क्रमपदसहितश्छंदविस्तीर्णशाखो ३०

उ० आदिशब्देन पर्युषिततांबूलदन्तधावनावसक्थिकादिवास्वापछत्रपादु- प०
३१ कागन्धमाल्योद्वर्त्तनानुलेपनजलक्रीडाद्यूतनृत्यगीतवाद्यालापादीनिव
र्जनीयानि स्मृत्यन्तरोक्तानि । अष्टाचत्वारिꣳशतं वर्षाणि वेदब्रह्मचर्य्य-
ञ्चरेदिति । अनेन वेदाध्ययनाङ्गतया ब्रह्मचर्य्यकरणमुक्तम् । वेदाध्ययना-
रम्भस्य काल, इति कर्त्तव्यता च नोक्ता केवलसमावर्त्तनसूत्रकरेणारब्धं
वेद ꣳ समाप्य स्नायादिति । तत्र वेदस्यारम्भं विना समाप्तिः कर्त्तुम-
शक्येति । उपनयनानन्तरमेव वेदारम्भस्य समय इत्यवगम्यते । इति

ऋक्पत्रः सामपुष्पो यजुरधिकफलोऽथर्वगंधं दधानः । यज्ञच्छायासमेतो द्विजमधुपगणैः सेव्यमानः प्रभाते मध्ये सायं त्रिकालं सुचरितचरितः पातु वो वेदवृक्षः ॥ स्वकाले सेविता नित्यं संध्या कामदुघा भवेत् । अकाले सेविता सा च संध्या वंध्यावधूरिव ॥ संध्या येनानु विज्ञाता संध्या येनानुपासिता । जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चैव जायते ॥ तस्मान्नित्यं प्रकर्तव्यं संध्योपासनमुत्तमम् । तदभावेऽन्यकर्मादावधिकारी भवेन्नहि ॥ नानुतिष्ठति यः ३१

उ० कर्त्तव्यता पुनरेतदेव व्रतादेशनविसर्जनेषु, इति उपाकर्महोमातिदेशाद् पु०
३२ व्रतादेशेन वेदारम्भं प्राप्नोति । अतश्च, उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्व्वकम् । वेदमध्यापयेदेनं शिक्षाचारांश्च शिक्षयेदिति ॥ उपनयनप्रकाशोऽयं लेखनात्पूर्णतांगतः ॥ इति प्रथमवेदी समाप्ता ॥

पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् । स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्म्मणः ॥ यथा पशुर्भारवाही न तस्य भजते फलम् । द्विजस्तथार्थानभिज्ञो न वेदफलमश्नुते ॥ व्यासस्मृतिः ॥

इसी क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य । ब्रह्मचारी, गृहस्थ, और वानप्रस्थ को प्रातः सायं संध्या अवश्य करनी चाहिये । अन्यथा दोषभागी होता है ।

अथ क्रमप्राप्तो-वेदारम्भप्रयोगो लिख्यते ।

ज्योतिश्शास्त्रोक्तपुण्याहे मातृपूजापूर्व्वं वेदारम्भपूर्व्वकं श्राद्धमाचार्य्यो विधाय, पञ्चभूसंस्कारपूर्व्वकं लौकिकाग्निं स्थापयेत् । तद्यथा,

उ० शुद्धायां भूमौ कुशैः परिसमूह्य, गोमयोदकेनोपलिप्य, खादिरेण स्फ्येनो- पृ०
३३ ल्लेखनं, वामहस्तेनोद्धरणम्, उदकेनाभ्युक्षणम्, एतान्पञ्च भूसंस्कारान्
कृत्वाऽग्नेः संस्थापनं कुर्य्यात् । कांस्यपात्रेणाग्निमादाय, प्रत्यङ्मुख-
मुपसमाधाय, ब्रह्मचारिणमाहूय, अग्नेः पश्चात्स्वस्योत्तरे उपवेश्य,
ब्रह्माणं वृणुयात् । ॐ नमोस्त्वनन्तायेति पादप्रक्षालनम् । चन्दनादिना
संपूज्य । ततः पुष्पचन्दनताम्बूलवस्त्राण्यादाय । ॐ तत्सदद्य देश-
कालौ संकीर्त्य । अद्यकर्त्तव्यवेदारम्भहोमकर्म्मणि कृताकृतावेक्षणरूप-
ब्रह्मकर्म्मकर्त्तुममुकगोत्रममुकशर्म्माणं ब्रह्माणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूल-
वासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे, इति ब्रह्माणं वृणुयात् । वृतोऽस्मीति प्रति-
वचनम् । यथाविहितं कर्म्म कुरु, इत्याचार्य्येणोक्ते, करवाणीति ब्रह्मा
ब्रूयात् । अग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं दत्त्वा । तदुपरि प्रागग्रान्कुशाना- ३३

उ० स्तीर्य्य, अग्निप्रदक्षिणं कारयित्वा, ब्रह्माणमुदङ्मुखं तत्रोपवेश्य, अस्मि- पृ०
३४ न्कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भवेत्यभिधाय, भवानीति तेनोक्ते, कल्पितासने उप-
वेशयेत् । प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा, वारिणा परिपूर्य, कुशैराच्छाद्य, ब्रह्मणो
मुखमवलोक्य, अग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात् । ततः परिस्तरणम् ।
बर्हिषश्चतुर्थभागमादाय, आग्नेयादीशानान्तम् । ब्रह्मणोऽग्निपर्य्य-
न्तम् । नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तम् । अग्नितः प्रणीतापर्य्यन्तम् । ततोऽग्ने-
रुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयम् । पवित्रकरणार्थं साग्र-
मनन्तर्गर्भकुशपत्रद्वयम् । प्रोक्षणीपात्रम् । आज्यस्थाली सम्मार्जनार्थं
कुशत्रयम् । उपयमनकुशाः । वेणीरूपं कुशत्रयम् । समिधस्तिस्रः
स्रुवः, खादिरः । गव्यमाज्यम् । षट्पञ्चाशदुत्तरमुष्टिशतद्वयावच्छिन्न-
तन्दुलपूर्णपात्रम् । पवित्रच्छेदनकुशाः । पूर्वादिशि क्रमेणासादनी- ३४

३० यानि। ततः पवित्रच्छेदनकुशैः पवित्रे छित्त्वा, ततः शाष्पनिकरेण प्रणी- १०
३५ तोदकं त्रिःप्रोक्षणीपात्रे निधाय। अनामिकांगुष्ठाभ्यामुत्तराग्रे पवित्रे
गृहीत्वा। ततः प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीपात्रमभ्युक्ष्य, प्रोक्षणीजलेनासा-
दितवस्तून्यभिषिच्य, अग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं निदध्यात्। तत
आज्यस्थाल्यामाज्यं निरूप्य, प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य, ज्वलत्तृणादिना
वेष्टयित्वा, वह्नौ प्रक्षिप्य, प्रदक्षिणक्रमेण ज्वलदग्निकरणम्। ततः
स्रुवस्य त्रिःप्रतपनं कृत्वा, संमार्जनकुशानामग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं
संमृज्य, प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य, पुनस्त्रिः प्रतप्य, दक्षिणतो निदध्यात्।
तत आज्यमग्निपूर्व्वेणानीय, अग्रे धृत्वा, आज्यप्रोक्षणीयवत्रिरुत्पव-
नम्। अवेक्ष्य, सत्यपद्रव्ये तन्निरसनम्। ततः प्रोक्षण्युत्पवनम्। तत
उत्थाय, उपयमनकुशान्वामहस्ते कृत्वा, प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा, ३५

उ० तूष्णीमग्नौ घृताक्ताः समिधः प्रक्षिपेत्। तत उपविश्य, सपवित्रकरेण पृ०
३६ प्रोक्षण्युदकेन प्रदक्षिणक्रमेणाग्नेः पर्य्युक्षणं कृत्वा, प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे निधाय, प्रणीतापात्रे पवित्रे निधाय, पातितदक्षिणजानुः, कुशेन ब्रह्मणान्वारब्धः समिद्धतमेऽग्नौ स्रुवेणाज्याहुतिं जुहुयात्। तत्राघारादिद्वादशाहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थितहुतशेषस्य घृतस्य प्रोक्षणीपात्रे-प्रक्षेपः। अथ होमः। ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये। इति मनसा। ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय। इत्याघारौ। ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये। ॐ सोमाय स्वाहा, इदं सोमाय। इत्याज्यभागौ। ततःप्राकृतोऽनन्वारब्ध-कर्तृको होमः। यदि ऋग्वेदमारभेत[1] तदा। ॐ पृथिव्यै स्वाहा, इदं पृथिव्यै।

---

१ यदि यजुर्वेदमारभते तदा आज्यभागानन्तरम्। ॐ अन्तरिक्षाय स्वाहा, इदमन्तरिक्षाय। ॐ वायवे स्वाहा, इदं वायवे, इति विशेषः। यदि सामवेदमारभते। तदा आज्य- ३६
भागान्ते, ॐ दिवे स्वाहा, इदं दिवे। ॐ सूर्याय स्वाहा, इदं सूर्याय। इति विशेषः।

उ० ओ३म् अग्नये स्वाहा, इदमग्नये। इति द्वे आज्याहुती हुत्वा। ओ३म् ब्रह्मणे प०
३७ स्वाहा, इदं ब्रह्मणे। ओ३म् छन्दोभ्यः स्वाहा, इदं छन्दोभ्यः। ओ३म् प्रजापतये
स्वाहा, इदं प्रजापतये। ओ३म् देवेभ्यः स्वाहा, इदं देवेभ्यः। ओ३म् ऋषिभ्यः स्वाहा,
इदमृषिभ्यः। ओ३म् श्रद्धायै स्वाहा, इदं श्रद्धायै। ओ३म् मेधायै स्वाहा, इदं
मेधायै। ओ३म् सदसस्पतये स्वाहा, इदं सदसस्पतये। ओ३म् अनुमतये स्वाहा,

---

यद्यथर्ववेदमारभते। तदा आज्यभागान्ते। ओ३म् दिग्भ्यः स्वाहा, इदं दिग्भ्यः। ओ३म् चन्द्रमसे स्वाहा, इदं चन्द्रमसे। इति विशेषः। यद्येकदा सर्ववेदारम्भः। तदा आज्यभागान्ते। ओ३म् पृथिव्यै स्वाहा। ओ३म् अग्नये स्वाहा। ओ३म् ब्रह्मणे स्वाहा। ओ३म् छन्दोभ्यः स्वाहा। ओ३म् अन्तरिक्षाय स्वाहा, इदमन्तरिक्षाय। ओ३म् वायवे स्वाहा, इदं वायवे। ओ३म् ब्रह्मणे स्वाहा। ओ३म् छन्दोभ्यः स्वाहा। ओ३म् दिवे स्वाहा। ओ३म् सूर्याय स्वाहा। पुनः। ओ३म् ब्रह्मणे स्वाहा। ओ३म् छन्दोभ्यः स्वाहा। दिग्भ्यः स्वाहा। पुनः। ओ३म् ब्रह्मणे स्वाहा। ओ३म् छन्दोभ्यः स्वाहा। ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। इत्याद्या अनुमतय इत्यन्ता सप्तमंत्रेण जुहुयात्। अनन्तरं महाव्याहृत्यादिस्विष्टकृदन्ता दशाहुतीर्हुत्वा प्राशनं विधाय, पूर्णपात्रवरयोरन्यतरं ब्रह्मणे दत्त्वा वेदमारभेत ॥ १ ॥ ३७

उ० इदमनुमतये। ततोऽन्वारब्धकर्तृको होमः। तत्तदाहुत्यनंतरं स्रुवावस्थित- प०
३८ हुतशेषस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः। ॐ व्याहृतीनां प्रजापति ऋषिरग्निवायु-
सूर्य्या देवताः गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि होमे विनियोगः। ॐ भूः
स्वाहा, इदमग्नये। ॐ भुवः स्वाहा, इदं वायवे। ॐ स्वः स्वाहा, इदं सूर्य्याय।
अथ सर्वप्रायश्चित्तहोमः। ॐ त्वन्नो अग्न इति वामदेवऋषिरग्निवरुणौ
देवते त्रिष्टुप्छन्दो होमे विनियोगः। ॐ त्वन्नोअग्ने वरुणस्य विद्वा-
न्देवस्य हेडो अवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमश्शोशुचानो विश्वा-
द्वेषाꣳसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा, इदमग्नीवरुणाभ्याम्। ॐ सत्वन्नो अग्न
इति वामदेवऋषिरग्निवरुणौ देवते त्रिष्टुप्छन्दो होमे विनियोगः। ॐ
सत्वन्नोअग्नेवमोभवोतीनेदिष्ठोऽस्याउषसोव्युष्टौ। अवयक्ष्वनो वरुणꣳ
रराणो वीहिमृडीकꣳसुहवो नऽएधि स्वाहा, इदमग्नीवरुणाभ्याम्। ॐ अ- ३८

७० याश्चाग्न इति वामदेवऋषिरग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दो होमे विनियोगः। ५०
३६ ॐ अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपाश्च सत्वमित्वमया असि। अयानो यज्ञं
वहास्ययानोधेहि भेषजं स्वाहा, इदमग्नये। ॐ येते शतमिति वामदेव
ऋषिर्वरुणः सविताविष्णुर्विश्वेमरुतस्स्वर्कोदेवता त्रिष्टुप्छन्दो होमे वि-
नियोगः। ॐ येते शतं वरुणये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः।
तेभिर्नोऽद्य सवितोत्तविष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतस्स्वर्काः स्वाहा, इदं वरु-
णाय, सवित्रे, विष्णवे, विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः। ॐ उदु-
त्तममिति शुनश्शेफऋषिर्वरुणो देवता त्रिष्टुप्छन्दो होमे विनियोगः।
ॐ उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय। अथावयमादि-
त्यव्रते तवानागसो अदितये स्वाहा, इदं वरुणाय। इति सर्वप्रायश्चित्तसं-
ज्ञकाः। ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये। इति प्राजापत्यम्। ॐ अग्नये ३६

स्विष्टकृते स्वाहा, इदमग्नये स्विष्टकृते । इति स्विष्टकृद्धोमः। ततः संस्रव-प्राशनम् । आचम्य, पूर्णपात्रं ब्रह्मणे दद्यात् । यथा। ॐ अद्यकृतैतद्वेदारम्भहोमकर्म्मणि कृताऽकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतममुकगोत्रायामुकशर्म्मणे ब्राह्मणाय ब्रह्मणे सदक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे। इति दक्षिणां दद्यात्। स्वस्तीति प्रतिवचनम् । ततो ब्रह्मग्रंथिविमोकः। ॐ सुमित्रियान आप ओषधयः सन्तु ।इति पठित्वा। पवित्राभ्यां प्रणीताजलमानीय । तेन वटोः शिरःसम्मृज्य । ॐ दुर्म्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः, इत्यैशान्यां प्रणीतान्युब्जीकरणम्। ततःस्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थायाज्येनाभिघार्य्य, हस्तेनैव जुहुयात् ।ॐ देवागातुं विदोगातुं वित्वागातुमित ।मनसस्पत इमं देवा यज्ञ छं स्वाहा वातेधाः स्वाहा, इति बर्हिर्होमः । ततः प्रत्यङ्मुखोपविश्य,

उ० आचार्य्यमुखमीक्षमाणाय, कूर्म्म इव प्रह्वीभूताय, ऋजवे, उपसन्नाय, संय- प०
४१ ताय, अनसूयाय, स्वहस्तौ जानुभ्यामुपरिकृताय, ब्रह्मचारिणे वेदं प्रय-
च्छति। तद्यथा—प्रणवं प्राक्प्रयुञ्जीत व्याहृतीस्तदनन्तरम्। सावित्रीं चानु-
पूर्व्वेण ततो वेदं समारभेत् *। ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्व्वदा।

---

* ततः काश्मीरगमनम्। तत इष्टांशके वेदारंभं गुरुः कारयेत्। ततः क्रमः। ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। इति प्रणवांतं पाठयेत्।

अर्थात् वेदारम्भ के प्रथम ओंकार सप्तव्याहृतिपूर्वक गायत्री मन्त्र पढ़े।

ओं गोतमऋषिर्गायत्रीछन्दः अग्निर्देवता वेदारम्भे विनियोगः। ओं इषेत्वोर्ज्जेत्वा वा-यवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्म्मणऽआप्यायद्ध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भाग-म्प्रजावतीरनमी वाऽअयक्ष्मामावस्तेनऽईशतमाघशꣳसोद्ध्रुवाऽअस्मिन्गोपतौ स्यात बह्वी-र्यजमानस्य पशून्पाहि॥ इति यजुर्वेदमंत्रः॥

ओं शन्नोदेवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये। शंय्योरभिस्रवन्तु नः॥ इति अथर्वणवेदमंत्रः॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ १ २ १ २ २ २ ३ १ २

ओं अग्नआयाहिवीतयेगृणानोहव्यदातये। निहोतासत्सिबर्हिषि॥ ४१

उ० अनेन क्रमेण कृतमङ्गलघोषो यथाशास्त्रं वेदपाठं कुर्यात्। येषां पारंपर्य्या- पृ०
४२ गतो यो वेदस्तच्छाखं कर्म्म कुर्व्वीत। तच्छाखाध्ययनं तथा। एवं सति यदि रेतः स्कन्दयति तदा शुद्ध्यर्थं नैर्ऋत्यं चरुं कुर्य्यात्। स्वप्ने चेदकामतो रेतः स्कन्दे, तदा स्नात्वा सूर्य्यं पूजयित्वा "पुनर्म्मन" इति त्रिर्जपेत्। यदि कार्य्यवशाद्दैवात्सप्तरात्राद्भिक्षालोपो भवति। अग्निपरिचर्य्या वा लुप्ता भवति। तदाऽवकीर्णव्रतं चरेत्। उपवीतादिनाशे, मनोज्योतिरित्यादि

ॐ ओ ४ ग्ना ४ इ ४ ॐ अ २ ग्न २ आ २ या २ ही २ ३ वायिता २ ऽ या ४३ु यि २। गृ २ णा २ नो २ ह २ व्य २ ३ दाता २ ऽ या ४३ु यि २। नि २ हो २ ता २ सा त्सी २ ३ वा रिहा २ षी ऽ २ ३॥ इति सामवेदमंत्रः॥

ॐ अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥ इति ऋग्वेदमंत्रः।

१ अधीत्य शाखामात्मीयां परशाखां ततः पठेत्। स्वशाखां यः परित्यज्य परशाखां समाश्रयेत्॥ अप्रमाणमृषिं कृत्वा सोऽन्धे तमसि मज्जति। उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम्। वेदमध्यापयेदेवं शौचाचारांश्च शिक्षयेत्॥ ४२

कामाहुतिं जुहुयात् । संध्याग्निकार्य्यलोपे । स्नात्वा गायत्र्यष्टसहस्रं जपेत् । स्वस्थो यदि भिक्षां न कुर्यात् तदा गायत्र्यष्टशतं जपेत् । मधु-मांसभक्षणे कृच्छ्रमेकं चरेत् । दण्डोपवीताजिनमेखलानां लोपे, आज्येन व्याहृतिहोमं कुर्य्यात् । एवं नित्यहोमान्ते नित्यं प्रार्थयेत् ओ३म् इषेत्वोर्ज्जे-त्वाऽवायवस्थदेवोवस्सविता प्रार्प्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वम-घ्न्याऽइन्द्राय भागम्प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मामावस्तेन ईशतमाघश-ꣳसोध्रुवाअस्मिन्गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ॥ वसोः पवित्रम् । ओ३म् ततश्च निराकरणमंत्रं पठेत् । अथाधीत्याधीत्यनिरा-करणप्रतीकम्मे विचक्षणं जिह्वा मे मधुमद्वचः । कर्णाभ्यां भूरिसु-श्रुवेमान्वाहार्षीः श्रुतम्मयि ब्रह्मणः प्रवचनमासे । ब्रह्मणः प्रतिष्ठान-मसि ब्रह्मकोशोऽसि शनिरसि शान्तिरस्यनिराकरणमसि ब्रह्मकोशम्मे

४४ विप्रावाचापिदधामि । स्वरकरणकण्ठौरसदन्दोष्ठग्रहणधारणोच्चारण- ५०
३० शक्तिर्भवन्त्वायन्तु मेऽङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुश्श्रोत्रं यशोबलं यन्मे श्रुत-
मधीतन्तन्मे मनसि तिष्ठतु तिष्ठतु ॥ इति वेदारम्भः । ततः सप्रणवं
स्वस्ति वाचयित्वा, उत्थाय फलपुष्पसमन्वितब्रह्मचारिदक्षिणकरस्पृष्टेन
स्रुवघृतपूर्णेन पूर्णाहुतिं दद्यात् । ओं मूर्द्धानं दिवोऽरतिं पृथिव्या
वैश्वानरमृतऽआजातमग्निम् । कविᳬं सम्राजमतिथिञ्जनानामास-
न्नापात्रञ्जनयन्त देवाः स्वाहा । इति पूर्णाहुतिः । ततः उपविश्य
स्रुवेण भस्मानीय दक्षिणानामिकाग्रगृहीतभस्मना । ओं त्र्यायुषं
जमदग्नेरिति ललाटे । ओं कश्यपस्य त्र्यायुषं इति ग्रीवायाम् ।
ओं यद्देवेषु त्र्यायुषं इति दक्षिणबाहुमूले । ओं तन्नो अस्तु त्र्यायुषं इति
हृदि । अनेनैव क्रमेण ब्रह्मचारिललाटादावपि तत्र तन्नो इत्यस्य स्थाने ४४

उ० तत्ते इति विशेषः वेदारम्भप्रकाशोऽयं लेखनात्पूर्णतांगतः ॥ इति द्वितीय- प०
४५ वेदी समाप्ता ॥

प्रणीतापात्र आदि का प्रमाण लिखते हैं—

(१) प्रणीतापात्र—प्रणीता वारणा ग्राह्या द्वादशांगुलसम्मिता। खातेन हस्ततलवदाकृत्या पद्मपत्रवत्॥ (२) प्रोक्षणीपात्र—प्रणीतानैर्ऋते भागे तद्वायव्यगोचरे। वारणं संविजानीयात्सर्वकर्मसु कारयेत् ॥ सर्वसंशोधनार्थोदपात्रं वारणमिष्यते। द्वादशांगुलदीर्घं च करतलोन्मितखातकम्॥ पद्मपत्रसमाकारं मुकुलाकारमेव वा। इति॥ (३) आज्यस्थाली—तैजसी मृण्मयी वापि ह्याज्यस्थाली प्रकीर्तिता। द्वादशांगुलविस्तीर्णा प्रादेशोच्चा शुभा स्मृता॥ (४) चरुस्थाली—चरुस्थाली तथैवापि दीर्घोच्चा तु प्रमाणतः। नानयोरन्तरं यस्माद् द्रव्यसंस्करणार्थका॥ (५) संमार्जनकुशा—स्रुचसंमार्जनार्थं तु कुशत्रयमुदीरितम्। इतिव्यासस्मृतिः। (६) उपयमनकुशा—उपयमनार्थमाख्यातास्त्रिपञ्चणवमिताः कुशाः। वेणीरूपा निरोधार्था निरोधे बहुभिः सुखम्, इति भृगुवचनम्। (७) समिधस्तिस्रः—पालाशजं तु प्रादेशमात्रं दैर्घ्येण स्थूलता। कनिष्ठिकासमं ध्यात्वा विधिमग्नौ क्षिपेच्च तत्॥
इति पराशरस्मृतिः। (८) स्रुव वा ब्रह्महस्त—स्रुवस्तु ब्रह्महस्ताख्यः स्कंधांतो बाहुरुच्यते। ४५
स्वाहाकारस्वधाकारवषट्कारसमन्वितः॥ दण्डाकारो भवेन्मूले स्यादरत्न्यां तु तत्समः।

सकङ्कणस्तु दण्डाग्रे हस्ताकारस्ततो बहिः ॥ अष्टांगुलीपरीमाणं तन्मूलाभ्यंतरे त्यजेत् । दशांगुलीपरीमाणमारभ्य कङ्कणावधि ॥ हस्तमात्रं भवेद्धस्तः स्रुव इत्यभिधीयते । खादिरः शैंशिपो वापि ह्यन्यो वा पुण्यवृक्षजः ॥ धावकोपि समाख्यातो होमार्थं मुनिभिः कृतः । इति । (९) घृतलक्षण—गव्यमाज्यं जुहुयात्तदभावे माहिषं स्मृतम् । तथा च श्रुतिः—गव्यमाज्यं जुहुयात्तदभावे माहिषेयमिति ॥ (१०) चरुलक्षण—व्रीहितण्डुलसंसिद्धो मुख्यः प्रोक्तः सुरर्षिभिरित्याचारचंद्रोदये। (११) पर्यग्निलक्षण—पर्यग्निं कुर्वन् ज्वलदुल्मुकमादाय प्रदक्षिणमाज्यचर्वोः समंतात् भ्रामयेत् । इति। (१२) समिधलक्षण—पलाशखदिराश्वत्थशम्युदुंबरजा समित् । अपामार्गार्कदूर्वाश्च कुशाश्चेत्यपरे विदुः ॥ सत्वचः समिधः कार्या ऋजुश्लक्ष्णाः समास्तथा। शस्ता दशांगुलास्तास्तु द्वादशांगुलिकास्तु वा ॥ आर्द्राः पक्वाः समच्छेदास्तर्जन्यंगुलिवर्तुलाः। अपाटिताश्च द्विशिखाः कृमिदोषविवर्जिताः॥ ईदृशा होमयेत्प्राज्ञः प्राप्नोति विपुलां श्रियम् । इति व्यास-कात्यायन-गौतम-भरद्वाजाः ॥

अथ समावर्त्तनप्रयोगः ।

तत्र वेदं समाप्य स्नायात्। ब्रह्मचर्यं वाऽष्टाचत्वारिंशकम्। द्वादशवर्षं वा वेदं मन्त्रब्राह्मणात्मकं समाप्य सम्यक् पाठतोऽर्थश्च अन्तं नीत्वा ४६

उ० स्नायात्। वक्ष्यमाणेन विधिना गुरुणानुमतः स्नानं कुर्यात्। स्नातकस्य प०
४७ त्रैविध्यमुक्तम्, विधिर्विधेयस्तर्कश्च वेदं समाप्येत्युक्तम्। तत्र कियान्वेद
इत्यपेक्षायामाह। विधिस्तु–(विधित्त इति विधिः) अग्नी आदधीत्,
अग्निहोत्रं जुहोति, ज्योतिष्टोमेन यजेत, इत्यादि विधायकं वाक्यम्। वि-
धेयस्तु विधीयते–विनियुज्यते ब्राह्मणवाक्येन कर्माङ्गत्वेनेति विधेयो
मंत्रः इषेत्वादिः तर्कोऽर्थवादः। यद्वा षडङ्गसहितवेदमधीत्य स्नायात्। तत्र
शुभे दिने, आचार्यो मातृपूजापूर्वकमाभ्युदयिकं श्राद्धं विधाय ब्रह्मचारी
आचार्यमभिपूज्य, साष्टाङ्गप्रणम्य, पादोपसंग्रहपूर्वकमभिवाद्य, अनुज्ञां
प्रार्थयेत्। भो आचार्य अहं स्नास्ये इति ब्रह्मचारिणोक्ते–स्नाहीत्याचार्यो
माणवकमनुज्ञाप्य, परिवेष्टिते देशे स्थित्वाऽपेक्षितानि वस्तून्युपकल्पयेत्।
हरितान्कुशान्, तैजसान्कुम्भान्, तदभावेऽन्यानष्टौ कुम्भान्साम्रपल्लवा- ४७

उ० ४८ न्वासो दधितिलान्वा नापितं, स्नानवारि, औदुम्बरं दन्तकाष्ठम्, उद्वर्त्त- प०
नम्, चन्दनम्, अहते वाससी, यज्ञोपवीतम्, पुष्पाणि, उष्णीषम्, कर्णा-
लङ्कारौ, अञ्जनम्, दर्पणम्, नूतनं छत्रम्, उपानहौ, वैणवं दण्डम्,
अन्यान्यपेक्षितानि कल्पयित्वा, पञ्चभूसंस्कारान्कुर्य्यात् । तद्यथा—
शुद्धायां भूमौ कुशैः परिसमूह्य, गोमयोदकेनोपलिप्य, खादिरेण स्फे-
नोल्लेखनं, वामहस्तेन मृदमुद्धरणम्, उदकेनाभ्युक्षणम्, एतान्पञ्चभू-
संस्कारान् कृत्वा, कांस्यपात्रेण लौकिकाग्निमादाय, प्रत्यङ्मुखमुपसमा-
धाय, अथ पश्चादग्नेर्ब्रह्मचारिणमुपवेश्य, देशकालौ स्मृत्वा, मम स्ना-
तकत्वसंसिद्धये समावर्त्तनकर्म्माहं करिष्ये । अथ देवताभिध्यानम् ।
समावर्त्तनकर्म्मणाहं यक्ष्ये तत्र प्रजापतिमिन्द्रमग्निं सोममन्तरिक्षं
वायुं ब्रह्माणं छन्दांꣳसि प्रजापतिं देवानृषीन्, श्रद्धां मेधां सदसस्पति- ४८

उ० मनुमतिमग्निं वायुं सूर्यमग्नीवरुणौ, अग्निं वरुणं सवितारं विष्णुं प०
४६ मरुतस्स्वर्कान्, वरुणं प्रजापतिमाज्येनाग्निं स्विष्टकृतञ्चाज्येनाहं यक्ष्ये।
समापितवेदानुसारेण देवताभिध्यानम् । ततो ब्रह्माणं वृणुयात् । ॐ
नमोऽस्त्वनन्तायेति पादप्रक्षालनम् । चन्दनादिना संपूज्य । ततः पुष्प-
चन्दनताम्बूलवस्त्राण्यादाय, ॐ तत्सदद्य देशकालौ संकीर्त्य, अद्यक-
र्त्तव्यसमावर्त्तनहोमकर्म्मणि कृताऽकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म्मकर्त्तुममुकगो-
त्रममुकशर्म्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनतांबूलवासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वा-
महं वृणे । इति ब्रह्माणं वृणुयात् । ब्राह्मणः, वृतोस्मीति प्रतिवचनम् ।
आचार्यः, यथा विहितं कर्म कुरु । इत्याचार्य्येणोक्ते । करवाणीति ब्रह्मा
ब्रूयात् । अग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं दत्त्वा तदुपरि प्रागग्रान्कुशाना-
स्तीर्य्य, अग्निप्रदक्षिणं कारयित्वा, ब्राह्मणमुदङ्मुखं तत्रोवेश्य, अस्मि- ४६

उ० न्कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भवेत्यभिधाय, ॐ भवानीति तेनोक्ते, कल्पितासने प०
५० उपवेशयेत् । प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा, वारिणा परिपूर्य, कुशैराच्छाद्य,
ब्रह्मणो मुखमवलोक्य, अग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात् । ततः परि-
स्तरणम् । बर्हिषश्चतुर्थभागमादाय, आग्नेयादीशानान्तम् । ब्रह्मणो-
ऽग्निपर्य्यन्तम् । नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तम् । अग्नितः प्रणीतापर्य्यन्तम् ।
ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयम् । पवित्रक-
रणार्थं साग्रमनन्तर्गर्भकुशपत्रद्वयम्, प्रोक्षणीपात्रम्, आज्यस्थाली,
सम्मार्जनार्थं कुशत्रयम्, उपयमनकुशाः, वेणीरूपं कुशत्रयम्, समिध-
स्तिस्रः, स्रुवः खादिरः, गव्यमाज्यम्, षट्पञ्चाशदुत्तरमुष्टिशतद्वयाव-
च्छिन्नं तन्दुलपूर्णपात्रम् । बह्वारपुरुषभोजनमात्रं वा । पवित्रच्छेदन-
कुशानां पूर्वपूर्वदिशि क्रमेणासादनीयानि । ततः पवित्रच्छेदनकुशैः ५०

उ० पवित्रे छित्त्वा। ततः शष्पनिकरेण प्रणीतोदकं त्रिःप्रोक्षणीपात्रे निधाय। प०
५१ अनामिकांगुष्ठाभ्यामुत्तराग्रे पवित्रे गृहीत्वा। ततः प्रणीतोदकेन प्रोक्ष-
णीपात्रमभ्युक्ष्य, प्रोक्षणीजलेनासादितवस्तून्यभिषिच्य, अग्निप्रणी-
तयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं निदध्यात्। तत आज्यस्थाल्यामाज्यं निरूप्य,
प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य, ज्वलत्तृणादिना हविर्वेष्टयित्वा, तद्वह्नौ प्रक्षिप्य,
प्रदक्षिणक्रमेण ज्वलदग्निकरणम्। ततः स्रुवं त्रिःप्रतप्य, संमार्जनकु-
शानामग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं संमृज्य, प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य, पुन-
स्त्रिः प्रतप्य स्वस्य दक्षिणतो निदध्यात्। तत आज्यमग्निपूर्वेणा-
नीय, अग्रे धृत्वा, आज्यप्रोक्षणीयवत्रिरुत्पवनम्। अवेक्ष्य, सत्यपद्रव्ये
तन्निरसनम्। ततः प्रोक्षण्युत्पवनम्। तत उत्थाय, उपयमनकुशान्वाम-
हस्ते कृत्वा, प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा, तूष्णीमग्नौ घृताक्ताः समिधः ५१

प्रक्षिपेत् । तत उपविश्य, सपवित्रकरेण प्रोक्षणयुदकेन प्रदक्षिणक्रमेणाग्नेः पर्य्युक्षणं कृत्वा, प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे निधाय, प्रणीतापात्रे पवित्रे निधाय, पातितदक्षिणजानुः, कुशेन ब्रह्मणान्वारब्धः समिद्धतमेऽग्नौ स्रुवेणाज्याहुतिं जुहुयात् । तत्र प्रथमाहुतिचतुष्टये प्रत्याहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थितहुतशेषस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः । ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये । इति मनसा । ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय । इत्याघारौ । ॐ अग्नये स्वाहा । इदमग्नये । ॐ सोमाय स्वाहा, इदं सोमाय । इत्याज्यभागौ, ततो यदि ऋग्वेदमधीत्य स्नानं करोति तदा ॐ पृथिव्यै स्वाहा, इदं पृथिव्यै । ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये । * ॐ ब्रह्मणे

---

* यदि यजुर्वेदमधीत्य स्नानं करोति, तदा आज्यभागानन्तरम्, ॐ अन्तरिक्षाय स्वाहा, इदमन्तरिक्षाय । ॐ वायवे स्वाहा, इदं वायवे । ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे । इत्याद्या नवाहुतीर्जुहोति । ततो महाव्याहृत्यादिस्विष्टकृदन्ता दशाहुतीर्हुत्वा समापयेत् ।

उ० स्वाहा, इदं ब्रह्मणे । ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा, इदं छन्दोभ्यः । ॐ प्रजापतये प०
५३ स्वाहा, इदं प्रजापतये । इति मनसा । ॐ देवेभ्यः स्वाहा, इदं देवेभ्यः ।
ॐ ऋषिभ्यः स्वाहाः, इदमृषिभ्यः । ॐ श्रद्धायै स्वाहा, इदं श्रद्धायै ।
ॐ मेधायै स्वाहा, इदं मेधायै । ॐ सदसस्पतये स्वाहा, इदं सदसस्पतये ।
ॐ अनुमतये स्वाहा, इदमनुमतये । ततो ब्रह्मणान्वारब्धो जुहुयात् ।

यदि सामवेदं पठित्वा, स्नाति । तदा आज्यभागान्ते, ॐ दिवे स्वाहा, इदं दिवे । ॐ सूर्याय स्वाहा, इदं सूर्याय । ब्रह्मणे, इत्यारभ्यानुमतय इत्यन्ता नवाहुतीर्महाव्याहृत्यारभ्य स्विष्टकृदन्ता दशाहुतीर्हुत्वा, शेषं समापयेत् । यद्या थर्वणवेदं पठित्वा स्नाति । तदा आज्यभागान्ते, ॐ दिग्भ्यः स्वाहा, इदं दिग्भ्यः । ॐ चन्द्रमसे स्वाहा, इदं चन्द्रमसे । ततो ब्रह्मण इत्यारभ्य अनुमतय इत्यन्ता महाव्याहृतय इत्यारभ्य स्विष्टकृदन्ता हुत्वा, शेषं समापयेत् । यद्येकदावेदचतुष्टयमधीत्य स्नानं करोति । आज्यभागानन्तरम्, प्रतिवेदं वेदाहुतिद्वयं हुत्वा, ब्रह्मणे छन्दोभ्य इत्याहुतिद्वयं च हुत्वा, प्रजापतये इत्याद्या अनुमतय इत्यन्ताः सप्तमन्त्रेण जुहुयात् । एवं वेदद्वयत्रयाभ्यासेऽपि योज्यम् । अन्तरम्, महाव्याहृत्यादिस्विष्टकृदन्ता दशाहुतीर्हुत्वा, प्राशनं विधाय दक्षिणादानान्तं कुर्यात् ॥ १ ॥ ५३

उ० अत्राहुतिदशतये तत्तदाहुत्यनंतरं स्रुवावस्थिताज्यस्य प्रोक्षणीपात्रे प०
५४ प्रक्षेपः। ॐव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिरग्निवायुसूर्य्यौ देवता गायत्र्यु-
ष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि होमे विनियोगः। ॐभूः स्वाहा, इदमग्नये।
ॐभुवः स्वाहा, इदं वायवे। ॐस्वः स्वाहा, इदं सूर्य्याय। अथ सर्व्व-
प्रायश्चित्तहोमः। ॐत्वन्नो अग्ने इति वामदेवऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्नि-
वरुणौ देवते होमे विनियोगः। ॐत्वन्नो अग्नेवरुणस्य विद्वान्देवस्य
हेडो अवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमश्शो शुचानो विश्वा द्वेषा
छंसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा, इदमग्नीवरुणाभ्याम्। ॐ सत्वन्नो अग्न
इति वामदेवऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्निवरुणौ देवते, होमे विनियोगः।
ॐ सत्वन्नो अग्नेवमोभवोतीनेदिष्ठोऽस्या उषसो व्युष्टौ। अवयत्त्वनो
वरुण छं रराणो वीहिमृडीकछंसुहवो नऽएधि स्वाहा, इदमग्नीवरुणा- ५४

३० भ्याम् । ओ३म् अयाश्चाग्न इति वामदेवऋषिरग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दो होमे ५०
५५ विनियोगः । ओ३म् अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपाश्च सत्वमित्वमया असि ।
अयानोयज्ञꣳवहास्ययानो धेहि भेषजꣳ स्वाहा, इदमग्नये । ओ३म् येते
शतमिति वामदेवऋषिर्वरुणःसविताविष्णुर्व्विश्वेमरुतस्स्वर्क्कोदेवता त्रि-
ष्टुप्छन्दो होमे विनियोगः । ओ३म् येते शतं वरुणये सहस्रं यज्ञियाः पाशा
वितता महान्तः । तेभिर्न्नोऽद्य सवितोत्तविष्णुर्व्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः
स्वर्क्कास्स्वाहा, इदं वरुणाय, सवित्रे, विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः
स्वर्केभ्यः । ओ३म् उदुत्तममिति शुनश्शेफऋषिर्व्वरुणो देवता त्रिष्टुप्छन्दो
होमे निनियोगः । ओ३म् उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमꣳ-
श्रथाय । अथावयमादित्यव्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा, इदं
वरुणाय । इति सर्वप्रायश्चित्तं । ओ३म् प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये । ५५

 इति मनसा । इति प्राजापत्यम् । ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इदम-
ग्नये स्विष्टकृते । ततः संस्रवप्राशनम् । आचम्य, पूर्णपात्रं ब्रह्मणे दद्यात् ।
यथा—ॐ अद्यकृतैतत्समावर्त्तनहोमकर्मणि कृताऽकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म्म-
प्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतममुकगोत्रायामुकशर्म्मणे ब्राह्म-
णाय ब्रह्मणे सदक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे । इति दक्षिणां दद्यात् । ॐ-
स्वस्तीति प्रतिवचनम् । ततो ब्रह्मग्रन्थिविमोकः ॐ सुमित्रियान आप
ओषधयः सन्तु, इति पठित्वा, पवित्राभ्यां प्रणीताजलमानीय तेन,
ब्रह्मचारिणः शिरः संमृज्य, ॐ दुर्म्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि
यं च वयं द्विष्मः इत्यैशान्यां प्रणीतान्युब्जीकरणम् । ततःस्तरणक्रमेण
बर्हिरुत्थाप्य, आज्येनाभिघार्य हस्तेनैव जुहुयात् । ॐ देवा इत्यस्यात्रि-

१ यथा प्रमाणं पञ्चाशता भवेद् ब्रह्मा । ब्राह्मण के अभाव में पचास कुशों का ब्रह्मा बनाना ।

उ० ऋषिः स्वराडार्युष्णिक्छन्दो मनसस्पतिर्देवता हवने विनियोगः । ॐ प०
५७ देवागातुं विदोगातुं वित्वागातुमित । मनसस्पत इमंदेवा यज्ञꣳस्वाहा
वातेधाः स्वाहा ॥ इति बर्हिहोमः ॥ ततो ब्रह्मचारी, पादोपसंग्रहणपूर्वकं
गुरुं नमस्कुर्यात् ॥ यथा—अमुकगोत्रोऽमुकप्रवरोऽमुकशर्माहं भो अग्ने
भो श्रीगुरो त्वामभिवादयामि । इत्यभिवादयेत् ॥ अथाचार्यस्य पादोप-
संग्रहणं व्यस्तपाणिना कर्त्तव्यम् । तत आचार्य आशिषं प्रयच्छति ।
आयुष्मान्भव सौम्यामुकशर्म्मन् भो ३ । तत आचार्यः पाणिनाग्निपरि
समूहति—(समृद्धीकरोति) ॐ अग्नेः सुश्रव इत्यादीनां ब्रह्मा ऋषिरग्नि-
र्देवता यजुः परिसमूहने विनियोगः । पञ्चशुष्कगोमयखण्डान् घृताक्ता-
नग्नौ एकैकं जुहुयात् । यथा—ॐ अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं माकुरु ॥ १ ॥
ॐ यथात्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि ॥ २ ॥ ॐ एवमाꣳ सुश्रवः सौश्रवसं ५७

उ० कुरु ॥३॥ ओं यथात्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि ॥४॥ ओं एवमहं प०
५८ मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासꣳस्वाहा ॥ ५ ॥ इत्येतैः पञ्चभिर्मन्त्रैः
प्रतिमंत्रमिन्धनप्रक्षेपेणाग्निं सन्धुक्षति ॥ हस्ताभ्यां सन्धुक्षणं प्रसिद्धिर
प्यस्ति केषाञ्चिन्मतम् ॥ ततोऽग्निप्रदक्षिणं हस्तेनाद्भिःपर्युक्ष्य, उत्थाय,
तिष्ठन्, समिधमादधाति । तत्र मंत्रः । ओं अग्नये इति प्रजापतिर्ऋषिः स-
मिद्देवता आकृतिश्छन्दः समिधादाने विनियोगः । ओं अग्नये समिध
माहार्षं बृहते जातवेदसे । यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यस एवमहमायुषा
मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसा समिन्धो जीवपुत्रो ममाचार्यो
मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयास
ꣳस्वाहा । इत्यनेन मंत्रेण । ततः समिदन्तरद्वयमनेनैव क्रमेण प्रत्येकं
हुत्वा, उक्तलक्षणामेकां समिधं कर्णे कृत्वाऽग्नौ समादधाति । अनेनैव ५८

३० द्वितीयां तृतीयां वा समिधमाधत्ते। ततः, एषा ते इत्यस्य मंत्रस्य आङ्गिरसो १०
५६ बृहस्पतिर्ऋषिरग्निर्देवता अनुष्टुप्छन्दः। ओ३म् एषा ते अग्ने समित्तया
वर्द्धस्व वाचाप्यायस्व वर्द्धिषीमहि च वयमाचप्यासिषीमहि ॥ अनेन
मंत्रेण, 'अग्नये समिधमाहार्षम्' अनेन मंत्रेण वा। आभ्यां समुचिता-
भ्यां मंत्राभ्यां वा, एकैकशस्तिस्रः समिधमादधाति। तत उपविश्य
पूर्ववत्, अग्ने सुश्रवस इत्यादिमंत्रैरग्निं सन्धुक्ष्य, पर्युक्ष्य, तूष्णीं
पाणी प्रतप्य मुखं मार्जयेत्। ओ३म् तनूपा इत्यस्य मंत्रस्य देवा ऋषयो
ऽग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः। ओ३म् तनूपा अग्नेऽसितन्वम्मे पाहि १। ओ३म्
आयुर्द्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि २। ओ३म् वर्च्चोदा अग्नेऽसिव्वर्च्चो मे देहि
३। अग्ने यन्मे तन्वाऊनन्तन्म आपृण ४। ओ३म् मेधां मे देवः सविता
आदधातु ५। ओ३म् मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु ६। ओ३म् मेधाम- ५६

उ० श्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ७। इति । एभिः सप्तभिर्मंत्रैः पाणी प०
६० प्रतप्य ललाटाच्चिबुकपर्यन्तं मुखं विमार्ष्टि । अत्र प्रत्येक मंत्रः । ॐ
अङ्गानि च मे आप्यायन्ताम्, अनेन मंत्रेण शिरःप्रभृतिपादान्तं सर्वा-
ङ्गमालभते । ॐ वाक् च मे आप्यायतामिति मुखम् । ॐ प्राणश्च मे
आप्यायतामिति नासिके । ॐ चक्षुश्च मे आप्यायतामिति चक्षुषी
युगपत् । ॐ श्रोत्रं च मे आप्यायतामिति श्रोत्रे । ॐ यशोबलं च मे
आप्यायतामिति बाहुमूलयोः।इति मंत्रं पठेत् । तत उदकस्पर्शः । ततोऽ-
नामिकया भस्म गृहीत्वा, त्र्यायुषाणि कुरुते । ॐ त्र्यायुषमिति मंत्रस्य
नारायणऋषिरुष्णिक्छन्दो यजमानाशीर्देवता त्र्यायुषकरणे विनियोगः।
ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेरिति ललाटे । ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषमिति ग्रीवायाम्।
ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषमिति दक्षिणबाहुमूले । ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषमिति ६०

उ० हार्दि। तत आचार्य्यपुरुषैः परिश्रितस्योत्तरभागे स्थापितानां दक्षिणोत्त- पृ०
६१ रायताना मष्टानां जलपूर्णकलशानाम् पूर्वभागे आस्तृतेषु प्रागग्रेषु
कुशेषु, उदङ्मुखः स्थित्वा। ॐ येऽप्स्वन्तरग्नय इति प्रजापति ऋषिरापो
देवता जगतीछन्दो जलग्रहणे विनियोगः। ॐ येऽप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा
गोह्य उपगोह्यो मयूषो मनोहास्खलो विरुजस्तनूदूषुरिन्द्रियहातान्विज-
हामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि, अनेन मंत्रेण प्रथमकलशाद्दक्षिणचुलु-
केन जलमादाय तेनोदकेन स्वकीयं शिरोऽभिषिञ्चति ब्रह्मचारी। ॐ
तेनेति प्रजापतिऋषिरापोदेवता अभिषेके विनियोगः। ॐ तेन मामभि-
षिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्च्चसाय, इति मंत्रेणात्मानमभिषिञ्चते।
एवं द्वितीयादिभ्यः सप्त उदकुम्भेभ्यः। येऽप्स्वन्तरग्नयइत्यनेनैव मंत्रेण-

१ ततोऽग्नेरुत्तरतः प्रागग्रान्कुशानास्तीर्य तदुपरिदक्षिणोत्तरक्रमेणासादितवारिपूर्ण- ६१
कलशाष्टतये कलशानां पुरतः प्रागग्रेषु कुशेषु स्थित्वा एकस्मादाम्रपल्लवेनोदकं गृहीत्वा।

उ० कैकस्माज्जलग्रहणम्। अभिषेचनमंत्रस्तु पृथक्पृथग्द्वितीयमंत्रः। ॐ येन पृ०
६२ श्रियमिति प्रजापतिऋषिरापो देवता यजुरभिषेचने विनियोगः। ॐ येन
श्रियमकृणुतांयेनावमृशता ँसुराम्। येनाक्षावभिषिञ्चतां यद्वान्तदश्वि-
नायशः। इत्यनेन मंत्रेण द्वितीयोदकुम्भेनाभिषिच्य। ततस्तृतीयजल-
कुम्भमादाय, येऽप्स्वन्तरित्यनेन। ॐ आपोहिष्ठेति ऋचः सिन्धुद्वीप
ऋषिर्गायत्रीछन्द आपोदेवताऽभिषेचने विनियोगः। ॐ आपोहिष्ठाम-
योभुवस्तानऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे॥ अनेन मंत्रेणाभिषिञ्चेत्॥
ततश्चतुर्थोदकुम्भजलं येऽप्स्वन्तरित्यनेनादाय। ॐ योव इति सिन्धुद्वीप
ऋषिरापो देवता गायत्रीछन्दोऽभिषेचने विनियोगः। ॐ योवःशिवत-
मोरसस्तस्य भाजयते हनः। उशतीरिव मातरः॥ अनेन मंत्रेणाभिषिञ्चे-
त्। ततः पञ्चमकुम्भादुदकमादाय पूर्ववत्। ॐतस्मा इति सिन्धुद्वीप ऋ- ६२

उ० षिरापो देवता गायत्रीछन्दोऽभिषेचने विनियोगः। ॐ तस्माऽअरङ्गमा पृ०
६३ मवो यस्यक्षयाय जिन्वथ। आपोजनयथाचनः॥ अनेनाभिषिञ्चति। ततो
येनाप्सुरिति मंत्रेण त्रिभ्यः कुम्भेभ्योदकमादाय क्रमेण तूष्णीं स्वकीयं
शिरोऽभिषिञ्चति। ततोऽवशिष्टकलशत्रितयजलं तथैव येप्स्वन्तरग्नय०
इति मंत्रेण। प्रत्येकं गृहीत्वा तूष्णीं प्रत्येकमभिषिञ्चति। ततोऽभिषेकज-
लेन स्नायात्। ततो मेखलामोचनं शिरोमार्गेण कुर्यात्। ॐ उदुत्तममि-
ति मंत्रस्य शुनःशेफऋषिर्वरुणो देवता त्रिष्टुप्छन्दो मेखलोन्मोचने
विनियोगः। ॐ उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमꣳश्रथाय।
अथावयमादित्यव्रते तवानागसोऽअदितये स्याम॥ इति मंत्रेण मेखला-
मुन्मुच्य भूमौ निधाय। अस्मिन्नेव समये कृष्णाजिनं च तूष्णीमुत्तार्य
दण्डत्यागं च कृत्वा वासोऽन्यत्परिधाय, आदित्यमुपतिष्ठते। ॐ उद्यन्नि- ६३

 त्यस्य मंत्रस्य प्रजापतिऋषिरापोदेवता शक्वरीछन्द उपस्थाने विनियोगः।
ॐ उद्यद्भ्राजिष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात्प्रातर्यावभिरस्थाद्दशशनिरसि
दशशनिं माकुर्व्वाविदन्मागमय। ॐ उद्यद्भ्राजिष्णुरिन्द्रोमरुद्भिरस्था-
द्दिवायावभिरस्थाच्छतशनिरसिशतं शनिं माकुर्व्वाविदन्मागमय। ॐ
उद्यद्भ्राजिष्णुरिन्द्रोमरुद्भिरस्थात्सायं यावभिरस्थात् सहस्रशनिं माकु-
र्व्वाविदन्मागमय। अनेन मंत्रेणादित्यमुपस्थाय। ततो दधितिलाना-
मन्यतमं दक्षिणहस्तमध्यगतं सोमतीर्थेन प्राश्याचम्य। जटालोमनखा-
नि वापयित्वा शीतोदकेन स्नात्वाचम्य। उक्तलक्षणेनौदुम्बरेण दन्त-
काष्ठेन कनिष्ठिकाग्रस्थूलेन दशाङ्गुलद्वादशाङ्गुलमानेन वा दन्तान् धाव-
येत्। ॐ अन्नाद्यायेति मंत्रस्याथर्व्वणऋषिरनुष्टुप्छन्दो वनस्पतिर्दे-
वता दन्तधावने विनियोगः। ॐ अन्नाद्याय व्यूहध्वं सोमो राजा यमा-

उ० गमत्। समे मुखम्प्रमाद्दयन्ते यशसा च भगे न च॥ततो दन्तन्चाल- प०
६५ -यित्वा द्विराचम्य सुगन्धिद्रव्यमिश्रितेन यवादिचूर्णेन तैलयुक्तेन शरीर-
मुद्धर्त्य पुनः सशरीरस्कं स्नात्वाचम्य, चन्दनाद्युपलेपने पाणिभ्यां
गृहीत्वा, मुखसमीपे निधाय मन्त्रं जपेत्। ॐ प्राणापानाभ्यामित्यस्य
मंत्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः प्राणापानौ देवते यजुश्चन्दनोपग्रहणे विनि-
योगः। ॐ प्राणापानौ मे तर्प्पय, चक्षुर्म्मेतर्प्पय, श्रोत्रं मे तर्प्पय, मुखं
च नासिकां च लभते। ततः पाणी प्रक्षाल्य तदुदकमंजलिनादाय।
अपसव्यं कृत्वा दक्षिणाभिमुखो भूत्वा। ॐ पितर इति मंत्रस्य प्रजा-
पत्यश्विसरस्वतीन्द्रा ऋषयः पितरो देवता सौत्रामण्यां विनियोगः।
ॐ पितरः शुन्धध्वम्। इति मंत्रेण पितृतीर्थेन भूमौ निषिञ्चेत्। अथ
यज्ञोपवीती भूत्वा, उदकं च स्पृष्ट्वा चन्दनादिना आत्मानमनुलिप्य इति ६५

उ० मन्त्रं जपेत्। ॐ सुचक्षा इति मंत्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरक्षिणी देवते यजुर्जपे प०
६६ विनियोगः। ॐ सुचक्षाअहमक्षिभ्यां भूयासꣳ सुवर्चामुखेन सुश्रुत्कर्णा-
भ्यां भूयासम्, इति जपित्वा ततो नूतनं वस्त्रं परिधापयति। ॐ परिधास्य
इत्यस्य मंत्रस्याथर्वण ऋषिर्वासो देवता पंक्तिश्छन्दो वस्त्रपरिधाने विनि-
योगः। ॐ परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि शतं च जीवामि
शरदः पुरूचीरायस्पोषामभिसंव्ययिष्ये। इति मंत्रेणाहतं वासो धौतं वा
परिधाय। अत्रावसरप्राप्तं यज्ञोपवीतं च धारयित्वा। पुनः यज्ञोपवीतपरि-
धानमंत्रः। यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्य-
मग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥ इति मन्त्रेण—द्वितीय-
ग्रहणम्। ॐ यज्ञोपवीतमिति प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्द उपवीतदेवता
यज्ञोपवीतपरिधाने विनियोगः। यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीते- ६६

उ० नोपनह्यामि । आचमनम् ॥ उत्तरीयवस्त्रद्वयं धारयेत् । ॐ यशसामेति पृ०
६७ मंत्रस्याथर्व्वण ऋषिर्व्वासोदेवता यजुरुत्तरीयपरिधाने विनियोगः । ॐ
यशसामाद्यावा पृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती यशोभगश्च माविदद्यशोमा-
प्रतिपद्यताम् । इति मन्त्रेणोत्तरीयं वासः परिधाय । वस्त्राभावे पूर्वस्यैवोत्त-
रवर्गेण । अनेनैवोत्तरमन्त्रेण परिधाय द्विराचमनं करोति । अथ माला-
स्रजमादत्ते । संग्रंथिता, इति मंत्रलिङ्गात् । तत्र मन्त्रः । ॐ याआहरदित्यस्य
मंत्रस्य भारद्वाजऋषिरनुष्टुप्छन्दः सुमनसो देवता पुष्पादानबन्धयोर्वि-
नियोगः । ॐ याआहरज्जमदग्निः श्रद्धायै कामायेन्द्रियायता अहंप्रति-
गृह्णामि यशसा च भगेन च । इति मन्त्रेण पुष्पाणि मालां च प्रतिगृह्णाति ।
ततस्तन्माल्यं शिरसि बध्नीयात् । तत्र मंत्रः—ॐ यद्यश इत्यस्य भारद्वाज
ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सुमनसोदेवता पुष्पबन्धने विनियोगः । ॐ यद्यशोऽ- ६७

प्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथुतेनसंग्रन्थिताः सुमनस आबध्नामि यशो मयि। इत्यनेन मन्त्रेण पुष्पाणि बध्नाति। तत अहतेन वाससा,उष्णीषं च कुर्य्यात्। तत्र मंत्रः—ॐ युवेति मन्त्रस्याङ्गिराऋषिर्बृहतीछन्दो बृहस्पतिर्दैवता शिरोवेष्टने विनियोगः। ॐ युवासुवासापरिवीतआगात स उ श्रेयान्भवति जायमानः। तन्धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्त, इति मंत्रेणोष्णीषं शिरसि वेष्टयति। ततः कर्णौ कुण्डलादिकमलङ्कारं च परिदध्यात्। ॐ अलङ्करणमित्यस्य मंत्रस्य प्रजापतिऋषिर्यजुरलङ्करणे विनियोगः। ॐ अलङ्करणमसि भूयोऽलङ्करणं भूयात्। इत्यनेन मन्त्रेण दक्षिणकर्णे कुण्डलं कृत्वा, तेनैव मन्त्रेण वामकर्णेऽपि। ततः कज्जलाभ्यञ्जनेन चक्षुरञ्जनं कुर्यात्। तत्र मंत्रः—ॐ वृत्रस्येति प्रजापतिऋषिरञ्जनं देवता अनुष्टुप्छन्दो नेत्राञ्जने विनियोगः। ॐ वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षु-

उ० र्द्दाअसि चक्षुर्म्मे देहि। इति मंत्रेण दक्षिणं नेत्रं सौवीराञ्जनेनाङ्क्ते अनेनैव प०
६६ मन्त्रेण वामनेत्रस्याप्यञ्जनं करोति। ततो दर्पणे आत्मानमवलोकयेत्।
ॐ रोचिष्णुरिति मंत्रस्य प्रजापतिऋषिर्यजुः सूर्यो देवता प्रोक्षणे विनियो-
गः। ॐ रोचिष्णुरसि अनेन मन्त्रेणात्मानमादर्शे प्रेक्षते। ततः छत्रं गृह्णी-
यात्। ॐ बृहस्पतेरित्यस्य मन्त्रस्य गौतमो ऋषिर्गायत्रीछन्दः छत्रं देवता
छत्रधारणे विनियोगः। ॐ बृहस्पते छदिरसि पाप्मनो ममान्तर्द्धेहि तेजसो
यशसो ममान्तर्द्धेहि। इति मन्त्रेणान्यस्माच्छत्रं प्रतिगृह्णाति। तत उपान-
हौ प्रतिदध्यात्। तत्र मंत्रः—ॐ प्रतिष्ठेस्थ इत्यस्य मन्त्रस्य प्रजापतिऋषि-
र्यजुर्द्धर्मो देवता उपानत्परिधाने विनियोगः। ॐ प्रतिष्ठेस्थो विश्वतोमा-
यात। इति मन्त्रेणोपानहौ प्रतिमुञ्चते। ततो वैणवं दण्डं प्रतिगृह्णीयात्।
तत्र मन्त्रः—ॐ विश्वाभ्य इत्यस्य मंत्रस्ययाज्ञवल्क्यऋषिर्यजुर्दण्डोदेवता ६६

उ० दण्डग्रहणे विनियोगः। ओ३म् विश्वाभ्योमानाष्ट्राभ्यः परिपाहि सर्वतः। इति १०
७० मन्त्रेण वैणवं दण्डं गृह्णाति। आचार्य्यपूजनम्। अस्मिन्नपि दिने गुरुसन्नि-
धौ वासः। अनुज्ञया वा गृहं गच्छेत्। इति समावर्त्तनम्। अत्र मातृपूजादि-
ब्रह्मणे दक्षिणादानान्तम्। आचार्य्यकृत्यम्। कलशाभिषेकादिदण्डग्रहणांतं
स्नानकर्त्तुर्वासः छत्रोपानद्ग्रहणव्यतिरिक्तानि दन्तप्रक्षालनादीनि मन्त्र
वन्ति सदा भवन्ति॥ वासः प्रभृतीनि तु नूतनान्येव भवन्ति मंत्रवन्ति च।
तत्र, आचार्य्यः स्नातकस्य नियमान् श्रावयेत्। त्रिरात्रव्रतादीनि च स्नात-
को यथोक्तानि कुर्यात्। तद्यथा—नृत्यगीतवादित्राणि न कुर्यान्नवगच्छेद
न्यैरपि क्रियमाणानि द्रष्टुं श्रोतुं वा। गीतं तु, इच्छया स्वयं गायति। क्षेमे
नक्तं ग्रामान्तरं न गच्छेत्, न च धावेत्, अक्षेमे तु गच्छेद्धावेच्च। उदपाना
वेक्षणवृक्षारोहणफलप्रचयनसन्धिसर्पण विवृत्तस्नानविषमलंघनशुक्त- ७०

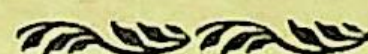
उ० वदनसन्ध्यादित्यप्रेक्षणोभिक्षणानि न कुर्यात् । वर्षति, अप्रावृतो न गच्छेत् प०
७१ अयम्मे पाप्मानमहनत्,इत्यनेनमन्त्रेण,अप्सुआत्मानं नावेक्षेत् । अजा-
तलोम्नीं वपुषीं षण्ढं च नोपहसेत् । गर्भिणीं विजन्येतिब्रूयात् । नकुलंसकु-
लमिति ब्रूयात् । कपालम् भगालमिति ब्रूयात् । इन्द्रधनुर्मणिधनुर्ब्रूयात् ।
गां धयन्तीमन्यस्मै स्वामिने वा न कथयेत् । उर्वरायाम्, अनन्तरायां भू-
मावुत्सर्प्पांस्तिष्ठन्मूत्रपुरीषे न कुर्यात् , प्रशीर्णेन पतितेन काष्ठेन गुदम् प्रमृ
जीत । विकृतं वासो नाच्छादयीत । दृढव्रतो भवेद् वधत्रः स्यात्सर्वेषाम् ।
मित्रमिव, अन्यस्मै स्वानि न कथयेत् । शरणागतरक्षकः । तिस्रो रात्रीर्व्रतं
चरेदमांसस्यमृण्मयपायीस्त्री,शूद्रशवकृष्णशकुनिशुनांचादर्शनमसंभाषा
च तैः शवशूद्रसूतकान्नानि च नाद्यात् । मूत्रपुरीषे ष्ठीवनं चातपे न कुर्यात् ।
आत्मानं नान्तर्द्दधीत् । तप्तोदकेनार्थान्कुर्व्वीत् । रात्रौ भोजनम् । सत्य- ७१

वदनमेव वा कुर्यात् इति । तत आचार्याय वरां दक्षिणां दद्यात् । ततः— मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्यावैश्वानरमृतऽआजातमग्निम् । कविꣳस-म्म्राजमतिथिञ्जनानामासन्नापात्रञ्जनयन्त देवाः स्वाहा ॥ इति मंत्रेण । फलपुष्पसमन्वितघृतपूर्णस्रुवेण माणवकदक्षिणकरस्पृष्टेन उत्थाय पूर्णा-हुतिमाचार्यः कुर्यादिति । तत उपविश्य । स्रुवेण भस्मानीय दक्षिणाना-मिकगृहीतभस्मना ॥ ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेरिति ललाटे । ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषमिति ग्रीवायाम् । ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषं इति दक्षिणबाहुमूले । ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषं इति हृदि । अनेनैव क्रमेण कुमारललाटादावपि । तत्र तन्नो इत्यस्य स्थाने तत्ते इति विशेषः । ततो मूर्धन्यक्षतादिग्रहणम् ।

इति तृतीयवेदी समाप्ता ॥

इति श्रीसामवेदि पंडितशिवगोविन्ददीक्षितवैदिकसंगृहीतोपनयन-वेदारंभसमावर्त्तनपद्धतिः समाप्ता ॥

कर्मकांड-संबंधी पुस्तकें—



पार्वण-श्राद्ध प्रयोग—स्वर्गीय पं० लक्ष्मीनारायणजी कृत भाषा-टीकासहित तथा पं० खूबचंद शर्मा द्वारा संशोधित। यह पुस्तक ऐसी उपयोगी बनाई गई है कि केवल हिन्दी पढ़ा हुआ भी, बिना किसी की सहायता के, पार्वण-श्राद्ध कर सकता है। ऐसी सरल पुस्तक, आजतक अन्यत्र नहीं छपी है। मूल्य केवल ⁄) मात्र।

विवाह-पद्धति—संग्रहकर्त्ता पं० शिवगोविन्द दीक्षित। इसमें क्रम से वररक्षा, फलदान, गीतारंभ, क्षयीयंत्रीपूजन, रात्रिजागरण, स्तंभारोपण, तैलाभ्यंग, मातृ-पूजापूर्वक आभ्युदयिक श्राद्ध, विवाहकृत्य, चतुर्थी कर्म आदि विषय सरल भाषा में स्पष्ट कर दिये गये हैं। पृष्ठ संख्या १७० मूल्य।≈)

हवनपद्धति—पं० खूबचंद शर्मा द्वारा संगृहीत। मूलमात्र। इसमें संक्षिप्तरूप से स्वस्त्ययन, कलशप्रतिष्ठा और हवनविधि आदि विषय हैं। मूल्य)॥।

मिलने का पता—

नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो), हज़रतगंज—लखनऊ.



इति उपनयनपद्धतिः ।



